www.thearyasamaj.org

VISHVA-JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६२, ९ दिसम्बर–2013

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

(सञ्चालक)

आदरी सह-सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर

होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द

चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल

होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला

पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
सुश्री स्नेह लता	सत्य हमें आज़ादी देगा	कविता	2
डॉ. भवानीलाल भारतीय	रामचरितमानस में लोकतत्त्व	लेख	3
डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	दक्षिणामूर्ति देवता-एक परिचय	लेख	6
डॉ. सत्यव्रत वर्मा	हमारे संग्रह के कुछ साहित्यिक पत्र	लेख	8
सुश्री अनीता रानी	भारतीय संस्कृति में संगीत से चिकित्सा	लेख	12
कु. शिखा कपूर	लोकद्रष्टा के रूप में सन्त तुलसी का योगदान	लेख	15
डॉ. नरेश कुमार शास्त्री	गुरुकुल, शिक्षा और प्रणाली	लेख	18
महात्मा चैतन्यमुनि	श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब एवं खान-पान	लेख	21
डॉ. रज्जू पटियाल	रीति और शैली में सम्बन्ध	लेख	25
डॉ. शशांक मिश्र ''भारती''	छोटी सी चिड़िया का घर	कविता	28
डॉ. मीरा कुमारी	वेद में यज्ञ का स्वरूपात्मक अध्ययन	लेख	29
श्री सीताराम गुप्ता	हर हाल में बचें रोडरेज से	लेख	34
डॉ. (श्रीमती) विनय गुप्ता	वेद और चिकित्सा-विज्ञान	लेख	36
श्री रमेश चन्द्र	कालभेद की व्यावहारिकता	लेख	40
श्री कौशल कुमार तिवारी	**आधुनिक संस्कृत कथा-साहित्य का अनुपम निदर्शन : कथानकवल्ली**	**लेख**	44
	विविध-समाचार		47
	संस्थान-समाचार		48

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६२ होश्यारपुर, मार्गशीर्ष २०७०; दिसम्बर २०१३ संख्या ९

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे (अङ्गानि) सर्वात्मानिभृष्टः ॥

(अथर्ववेद-19. 60. 2)

मेरी (ऊर्वोः) रानों में बल हो। मेरी (जङ्घयोः) जंघाओं में वेग हो। मेरे (पादयोः) पांओं में दृढ़ता हो। मेरे सब अंग ठीक हों। मेरा (सर्वात्मा) शरीर (अनिभृष्टः) अतिपुष्ट हो।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

सत्य हमें आज़ादी देगा

–सुश्री स्नेह लता

सत्य हमें आज़ादी देगा,
सच्चे रास्ते को अपनाओ,
सच्चाई के पथ पर चलकर,
हर मुश्किल आसान बनाओ।

सत्य बात कहने से पहले,
नहीं भूमिका रचनी पड़ती,
झूठ छिपाने की खातिर ही,
कथनी नित्य बदलनी पड़ती।

आशंका, दुविधा या चिन्ता,
नहीं हृदय में घर कर पाती,
सच्चाई जीवन की कुञ्जी,
यह मन में निश्चिन्ता लाती।

बोला झूठ गड़रिया प्रतिदिन,
निज विश्वसनीयता गंवाई,
विपदा में था कोई न साथी,
अपनी शामत आप बुलाई।

अब्दुल कादिर से सच सुनकर,
डाकू का भी हृदय पसीजा,
छोड़ कुमार्ग बना सत्गामी,
सच का पाया सफल नतीजा।

गांधी जी ने सच पर चलकर,
भारत को आज़ाद कराया,
गौतम, नानक, हरिश्चन्द्र ने,
सच्चाई से प्रभु को पाया।

ईश्वर है सच, सच ही शिव है,
शिव ही सुन्दर कहलाता है,
सत्य राह पर चलने वाला,
हर भय से विमुक्ति पाता है।

– 1/309, विकास नगर, लखनऊ-226 022

www.thearyasamaj.org

रामचरितमानस में लोकतत्त्व

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

गोस्वामी तुलसीदास जी ने जब 1631 वि. को रामनवमी के दिन शील, शक्ति और सौन्दर्य के प्रतिरूप भगवान् राम के लोकपावन चरित का लेखन आरम्भ किया तो उनका कहना था कि वे रामायण की कथा के लिए 'नाना पुराण निगमागम' का आधार ले रहे हैं। साथ ही उनका कहना यह भी था कि वे कुछ अन्य स्रोतों से भी अपनी कथा के सूत्र एकत्र कर रहे हैं। ऐसा कह कर वे उस लोकतत्व की ओर संकेत कर रहे हैं जिसका आधार इस कवि ने अपने इस विश्वविख्यात काव्य में किया है। वस्तुतः लौकिक जगत् के सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण का यथोचित समावेश काव्य-रचना में होना ही चाहिए।

यही कारण है कि रामचरितमानस में शास्त्र और लोक का उपयुक्त समन्वय हमें सर्वत्र दिखाई देता है और इसीलिए यह ग्रन्थ राजा और रंक, मूर्ख और पण्डित, सवर्ण या अन्त्यज सभी वर्गों में अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। मानस की उक्तियों को सर्व-सामान्यजन यथाप्रसंग प्रमाण रूप में पेश करते हैं। मानसकार ने इन सूक्तियों द्वारा अनेक शाश्वत सच्चाईयों को वाणी दी है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में धर्म, दर्शन, नीति, आचार, राजनीति, दण्डनीति तथा समाज-व्यवस्था के मूल्यों को विभिन्न सूक्तियों के द्वारा उल्लिखित किया गया है। यह कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

हंस का नीर-क्षीर विवेक प्रसिद्ध है। गोस्वामीजी के अनुसार सन्तजन उस हंस के तुल्य हैं जो दूध-रूपी गुणों को दोषरूपी जल से पृथक् कर देते हैं–

जड़ चेतन गुण दोसमय बिस्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय परिहरहिं वारि विकार॥

सीय राम मय सब जग जानी।
करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी॥

इस कथन में 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्' के शाश्वत सत्य को दोहराया गया है। जब सारा संसार ही राम-जानकी की सत्ता से युक्त है तो यह सृष्टि भी हमारे लिए वंदनीय है।

अपनी कृति (कविता या अन्य कलाकृति) सभी को प्रिय होती है चाहे वह गुणयुक्त है या गुणहीन हो। इसे निम्न चौपाई में देखें –

निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होऊ अथवा अति फीका॥

समर्थ व्यक्ति को कोई दोष नहीं देता, जैसे सूर्य, अग्नि तथा गंगा को सर्वसमर्थ माना जाता है–

www.thearyasamaj.org

समरथ को नहिं दोस गुसांई।
रवि पावक सुरसरि की नांई॥

गोस्वामीजी ने ईश्वर के अवतार के गीता-कथित सिद्धान्त को अपनी कविता में इस प्रकार व्यक्त किया है-

जब जब होहिं धरम की हानी।
बाढहिं असुर महाबलवानी।
तब तब प्रभु धर विविध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

इन पंक्तियों को गीता के '**यदा यदा हि धर्मस्य**' का अनुवाद ही समझें।

मन, वचन तथा कर्म की दृढ़ता तथा सती स्त्री के पतिव्रत धर्म से अडिग होने का उदाहरण शिव जी के धनुष से दिया गया है-

उगहिं न सम्भु सरासन कैसे।
कामी वचन सती मन जैसे॥

'**अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत**' इस कथन को तुलसी जी ने निम्न रूप दिया है-

का वरषा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पाछे पछिताने॥

विकलांग लोगों के प्रति जनमानस की घृणापूर्ण भावना को कवि ने कुबड़ी मन्थरा की क्षुद्र प्रवृत्ति से व्यक्त किया है-

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकानि॥

भरत माता का यह निंदात्मक कथन कुबड़े, काने तथा लंगड़े के अलावा सामान्य नारी और दासी को भी लपेट लेता है।

राजनीति को बला समझने वालों के मनोविज्ञान को कवि ने खूब समझा है-

कोऊ नृप होहिं हमें का हानी।
चेरि छोड़ि अब होवकि रानी॥

शासक चाहे कोई बने सामान्य जन को तो वैसा ही रहना है। उसकी दशा में कब सुधार होगा? दासी तो दासी ही रहेगी।

कर्म की गति विचित्र है। कहने के लिए हम चाहे कहते रहें कि जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा, किन्तु लोक में इससे उल्टा भी दिखाई देता है -

और करे अपराध कोऊ और पाय फल भोग।
अतिविचित्र भगवन्त गति को जग जाने जोग॥

'करे कोई, भुगते कोई' के न्याय को परमात्मा की गति कहने से शायद ही कोई सहमत हो? '**होनहार बलवान है**' इस उक्ति को वसिष्ठ मुनि ने इस प्रकार व्यक्त किया है -

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेऊ मुनि नाथ।
हानि लाभ जीवन मरण जस अपजस विधि हाथ॥

जन्म और मरण चाहे दैवाधीन हो, किन्तु हानि या लाभ तथा यश और अपयश का पाना तो हमारे अधीन भी है। राम नाम के चमत्कार और राम नाम-जप को वाल्मीकि के उदाहरण से तुलसी ने गौरवान्वित किया है-

www.thearyasamaj.org

उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीक भये ब्रह्मसमाना॥

धैर्य, धर्म, मित्र तथा स्वपत्नी की परीक्षा विपत्ति पड़ने पर होती है। इस प्रसिद्ध नीतिवाक्य को गोस्वामीजी ने अभिव्यक्ति दी है–

धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपत काल परखिए चारी॥

गोस्वामी तुलसीदास साम्प्रदायिक सौमनस्य के समर्थक थे। तभी तो उन्होंने कहा है–

सिव द्रोही मम दास कहावा।
सो नर सपनेहुं मोहि नहिं पावा॥

अपने युग में व्याप्त शैवों और वैष्णावों के विरोध को मिटाने में मानस की उपर्युक्त पंक्तियां कारगर सिद्ध हुईं।

मूर्ख के हृदय में बुद्धि का प्रादुर्भाव कठिन है चाहे उसे विधाता के समान गुरु क्यों न मिल जायें?

मूरख हृदय न चेत।
जो गुरु मिलहिं विरंचि सम॥

'परोपदेशे पाण्डित्यं' और दूसरों को उपदेश देने में कुशल व्यक्तियों की बहुलता को लक्ष्य कर गोस्वामीजी ने कहा है–

पर उपदेश कुसल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

उपदेश देने की अपेक्षा उसे आचरण में लाना कठिन है।

कवि ने स्पष्ट किया है कि सब की भाषा सब कोई नहीं समझता। पक्षी ही स्वजाति के पक्षी की भाषा को समझते हैं–

खग जाने खग ही की भाषा॥

निश्चय ही जन-मन को अपनी सूक्तियों में पिरो कर तुलसीदास जी ने अपनी इस कृति को जन-जन का कण्ठहार बना दिया है।

–8/423, नन्दन वन, जोधपुर (राजस्थान)।

www.thearyasamaj.org

दक्षिणामूर्ति देवता-एक परिचय

– डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

दक्षिणामूर्ति देवता की उपासना का प्रचलन दक्षिण भारत में विशेष रूप से है। उत्तर भारत में इसकी उपासना का प्रचलन बहुत कम है। काशी जैसी नगरी में भी कुछ दक्षिणामूर्ति मठ तो पाए जाते हैं, पर सामान्य जनता इनसे विशेष रूप से परिचित नहीं है।

दक्षिणामूर्ति तान्त्रिक देवता हैं। इनके स्वरूप एवं धार्मिक अनुष्ठान के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है, पर अधिकतर वे हस्तलेख रूप में ही उपलब्ध हैं। आदिशंकराचार्य का 'दक्षिणामूर्ति-स्तोत्र' अपनी आध्यात्मिक महत्ता के कारण विद्वानों में प्रसिद्ध है। इसके केवल दस लम्बे पद्य ही उपलब्ध होते हैं। इस स्तोत्र पर अनेकों टीकाएँ की गई हैं।

'दक्षिणामूर्ति उपनिषद्' के नाम से एक उपनिषद् भी उपलब्ध है। इसका आरम्भ शौनक आदि ऋषियों के द्वारा चिरंजीवी मार्कण्डेय ऋषि के साथ आध्यात्मिक प्रश्न के रूप में होता है। ब्रह्मावर्त में वट वृक्ष के नीचे शौनक आदि ऋषियों ने मार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि किस कारण से आप चिरंजीवी हैं? और किस प्रकार से आनन्द का अनुभव करते हैं? मार्कण्डेय ऋषि ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा- जिसके द्वारा दक्षिणामुख शिव साक्षात् प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाते हैं, वही परम रहस्यभूत शिवतन्त्र का ज्ञान है। पुनः प्रश्न किया गया – दक्षिणामूर्ति शिव कौन हैं ? उत्तर में कहा गया- 'प्रलयकाल में समस्त संसार को अपने में लीन करके स्वात्मानन्द सुख में जो आनन्दित होते हैं, वही दक्षिणामूर्ति शिव हैं- **यः सर्वोपरमे काले सर्वान् आत्मनि उपसंहृत्य स्वात्मानन्द-सुखे मोदते प्रकाशते वा स देवः।**

इस सन्दर्भ में दक्षिणामूर्ति के अनेक ध्यान, मन्त्र तथा रहस्यसूचक श्लोक दिए गए हैं। इसके पश्चात् अनेक फलप्रदायक मन्त्रों तथा उनकी अनुष्ठान-विधि का विधान दिया गया है। अन्त में इसी को पमरहस्य शिवतत्त्व-विद्या की संज्ञा दी गई है, जिसके अध्ययन या पाठ से साधक सब पापों से मुक्त हो जाता है और मोक्ष के आनन्द का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त दक्षिणामूर्ति-संहिता, दक्षिणामूर्ति पंचांग, दक्षिणामूर्ति-पटल, दक्षिणामूर्तिसहस्रनाम, दक्षिणामूर्तिदीपिका, दक्षिणामूर्ति-मन्त्रार्णव, दक्षिणामूर्ति पूजा-पद्धति आदि ग्रन्थ भी हस्तलेख रूप में उपलब्ध हैं जो इस देवता की प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता के प्रमाण हैं। दक्षिणामूर्ति स्तोत्र का प्रथम पद्य यह है-

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया।

www.thearyasamaj.org

यः साक्षात् कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

अर्थात्, ज्ञानी की दृष्टि में विश्व स्व-आत्मगत तथा दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर के समान है, पर माया से बहिर्वत् दिखाई देता है। प्रबोधकाल में माया के नष्ट हो जाने पर, यह पुनः अपने स्व-आत्मगत रूप में ही साक्षात् प्रकट होता है। शंकराचार्य का यह दक्षिणामूर्तिस्तोत्र अपने आध्यात्मिक गम्भीर अर्थ रखने के कारण अतीव प्रसिद्ध है। जैसे दुग्धसागर से मन्दराचल के मन्थन करने पर अमृत की उत्पत्ति हुई थी, वैसे ही वेदान्तरूपी दुग्ध-सागर को न्यायमन्दर द्वारा विचार के मन्थन से उत्पन्न अद्वैतरूपी अमृत से यह स्तोत्ररूपी कलश परिपूर्ण है। सुरेश्वराचार्य के अनुसार इस पद्य का अर्थ है-

दक्षिणामूर्ति शिव का ही नामान्तर है जो परमेश्वर के द्वारा जीवों को अद्वैतत्व की दीक्षा देने के लिए गुरुरूप में स्वीकृत है। दक्षिणामूर्ति उपनिषद् के पद्य 19 के अनुसार जिसके साक्षात्कार से बुद्धि की प्राप्ति हो, उस शिव को ब्रह्मवादी दक्षिणामुख या दक्षिणामूर्ति के नाम से पुकारते हैं-

शेमुषी दक्षिणा प्रोक्ता सा यस्यामीक्षणे मुखम्।
दक्षिणाभिमुखः प्रोक्तः शिवोऽसौ ब्रह्मवादिभिः॥

दक्षिणामूर्ति का सुन्दरमूर्ति भी अर्थ किया जाता है-

स्फटिकरजतवर्ण-मौक्तिकीमक्षमाला-
ममृतकलशविद्यां ज्ञानमुद्रां कराग्रे।
दधतमुरगकक्ष्यं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं
विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्तिमीडे॥
(दक्षिणामूर्ति उप. 3)

उनका रूप स्फटिक तथा चांदी के समान शुभ्र (सफेद) है, उन्होंने अपने गले में मोती की अक्षमाला धारण की हुई है, वे अमृतकलश, विद्या तथा ज्ञान की मुद्रा धारण करने वाले हैं, उनके कटिप्रदेश में सर्प लिपटा हुआ है, वे मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किए हुए तथा तीन नेत्रों से युक्त हैं। विभिन्न आभूषणों से अलंकृत दक्षिणामूर्ति की मैं स्तुति करता हूँ। इन दक्षिणामूर्ति की मूर्तियों की उपलब्धि दक्षिण भारत में विशेषरूप से होती है। पुरी में जगन्नाथ के मन्दिर में वीणाधर मूर्ति तथा विष्णुकाञ्ची मन्दिर में योगमूर्ति स्थित है। इन मूर्तियों का निर्माण दक्षिणामूर्ति-उपनिषद् के अष्टम पद्य के आधार पर किया गया प्रतीत होता है-

भस्मव्यापाण्डुराङ्गः शशिशकलधरो ज्ञानमुद्राक्षमाला
वीणापुस्तैर्विराजत्करकमलधरो योगपट्टाभिरामः।
व्याख्यापीठे निषण्णो मुनिवरनिकरैः सेव्यमानः प्रसन्नः
सव्यालः कृत्तिवासा सततमवतु नो दक्षिणामूर्तिरीशः॥

विशाल शाखाओं से सम्पन्न वटवृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में एक युवक योगी बैठा हुआ है। उसके हाथ में कमल है और उसने मुख पर ज्ञानोपदेश की मुद्रा धारण की हुई है। उपदेश सुनने के उत्सुक वृद्ध ऋषिगणों के द्वारा वे चारों ओर से घिरे हुए हैं। वे ही दक्षिणामूर्ति देव हैं।

– साधु आश्रम, होश्यारपुर।

www.thearyasamaj.org

हमारे संग्रह के कुछ साहित्यिक पत्र

–डॉ. सत्यव्रत वर्मा

सन् 1964 में यहां आकर हमने सर्वप्रथम जिस कृति का अध्ययन किया था, वह डॉ. वी.राघवन् का पुस्तकाकार प्रकाशित निबंध 'माडर्न संस्कृत लिट्रेचर' था। उसमें मुख्यत: दक्षिणभारत में लिखित अर्वाचीन संस्कृत–साहित्य का परिचय दिया गया है। उत्तरभारत, विशेषत:, पंजाब, में रचित साहित्य को पुस्तक में अपेक्षित स्थान/महत्त्व नहीं मिला है। हमने पत्र द्वारा इस असन्तुलन की ओर डॉ. राघवन् का ध्यान आकृष्ट किया और उनसे अनुरोध किया कि पत्रोत्तर हिन्दी में दिया जाए। राघवन् महोदय संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् थे। कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का उन जैसा संगम अन्यत्र कम मिलेगा। वे अंग्रेज़ी के सिद्धहस्त लेखक थे, किन्तु हिन्दी में उनकी अभिव्यक्ति सहज नहीं थी। इसी लिये उन्होंने हमें जो पत्र हिन्दी में लिखा, यद्यपि आज उस का ऐतिहासिक महत्त्व है, किन्तु उसका एक वाक्य भी ऐसा नहीं है, जिसे सर्वशुद्ध कहा जा सके। पत्र का यह अंश द्रष्टव्य है– ''पंजाब लेखकों को उपेक्षित कर दिया– आपका इस अर्थापत्ति को आधार मैं नहीं देखता। कृतियों को सुलभ से मिलन ही प्रश्न है। मेरी तो साकल्यतम विवेचन है।'' हिन्दी में अपनी अभिव्यक्ति से आश्वस्त न होने के कारण उन्होंने अंग्रेज़ी रूपान्तर भी पत्र के साथ संलग्न किया था।

अभिलेखशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते हमारी प्राचीन भारतीय इतिहास में गहरी रुचि है। गुप्तकाल के इतिहास में रामगुप्त की स्थिति अब भी विवादास्पद है। हमें ज्ञात हुआ कि प्राचीन भारतीय इतिहास एवं कला के विश्रुत विद्वान् डॉ. कृष्णदत्त वाजपेयी को खुदाई में रामगुप्त के सिक्के प्राप्त हुए हैं, जिनसे संकेत मिलता है कि उसने कुछ समय के लिये शासन अवश्य किया था। अपने 27. 4. 64 के पत्र द्वारा डॉ. वाजपेयी ने सूचित किया 'एरन खुदाई' की रिपार्ट छप चुकी है, जो पांच रुपये देकर विभाग से प्राप्त की जा सकती है। कुछ समय पश्चात् उन्होंने अपने राम–गुप्त सम्बन्धी लेखों के प्रतिमुद्रण भी हमारे पास भेजे, जिनसे हमें उस कुख्यात शासक ? के विषय में अधिक जानकारी मिली।

राजस्थान में आने पर हमारा परिचय जैन–साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित श्री अगरचन्द नाहटा से हुआ, जो शनै: शनै: प्रगाढता में परिणत हो गया और उनके स्वर्गारोहण तक यथावत् बना रहा। नाहटा जी जैन–साहित्य के गतिमान् कोष थे। स्वयं उनका पुस्तकालय - अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर - किसी चमत्कार से कम नहीं था। उसमें तब एक लाख ग्रन्थ संगृहीत थे, जिनमें से साठ हज़ार हस्तलिखित थे। हमें जैन संस्कृत–

www.thearyasamaj.org

साहित्य तथा उसकी पृष्ठभूमि के रूप में जैनदर्शन के अध्ययन में प्रवृत्त करने का समूचा श्रेय नाहटा जी को है। निरन्तर पत्र-व्यवहार के कारण नाहटा जी के पचासों पत्र हमारे संग्रह में विद्यमान हैं। वह पत्रावली स्वयं में एक साहित्य है। उसमें जैन-साहित्य से सम्बन्धित अतीव उपयोगी जानकारी समाहित है। उनके भ्रातृपुत्र श्री भंवर लाल नाहटा भी उसी कोटि के विद्वान् थे। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अंग्रेज़ी, डिंगल आदि भाषाओं के ज्ञाता, अनुसन्धान कर्ता, कवि तथा कला के पारखी थे। उनके भी बीसियों पत्र हमारे पास सुरक्षित हैं। उनका नव वर्ष की बधाई का पत्र स्वयं में एक कलाकृति होता था। उनके पत्रों से ही हमें सर्वप्रथम ज्ञात हुआ था कि अकबर के कल्याणमित्र, पद्मसुन्दर की काव्य-शास्त्रीय कृति 'अकबरशाहि शृंगारदर्पण' गंगा अरियेण्टल सीरीज़ में बीकानेर से प्रकाशित हुआ था और उपाध्याय समयसुन्दर का चमत्कारी ग्रन्थ 'अष्टलक्षी' सूरत से निकला था किन्तु अब अप्राप्य है। भंवरलाल जी इसे पुनः प्रकाशित करना चाहते थे, किन्तु ईश्वर को यह स्वीकार नहीं था। उनके स्वरचित अपभ्रंशकाव्य 'सिरिसहजानन्दघनचरियं' की प्रति हमारे संग्रह में सुरक्षित है।

नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा के जैन विद्वान् डॉ. गुलाबचन्द चौधरी ने 'जैन साहित्य के बृहद् इतिहास' के छठे भाग की रचना करते समय अपने 26. 7. 71 के पत्र द्वारा हमें जैन संस्कृत-महाकाव्यों से सम्बन्धित जानकारी भेजने का अनुरोध किया। हमने उनके पास पुष्कल सामग्री भेजी जिसका उन्होंने ग्रन्थ में यथावत् समावेश तो किया किन्तु हमारा उल्लेख करना भी उचित नहीं समझा।

भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में हमने श्री अगरचन्द नाहटा की प्रेरणा से कीर्तिराज उपाध्याय के 'नेमिनाथ महाकाव्य' का हिन्दी अनुवाद सहित सम्पादन किया था। वह हमारी प्रथम कृति थी। अतः हमने उसे अधिकाधिक निर्दोष बनाने के लिये गुरुवर पं. चारुदेव शास्त्री से उसका परिमार्जन करने का निवेदन किया। उन्होंने एक वात्सल्यपूर्ण पत्र में वार्धक्यजन्य विकलता के कारण जिस प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट की, उसे उन्हीं के शब्दों में पढ़ें- " I am sorry I cannot suffer any more strain. I am reduced to a skeleton. My strenuous work on the *Vyakaraṇa candrodaya* has left me a decrepit. You know the great love and regard I have for you. I look upon you as my own son. Besides I have a fondness for revision--- Indeed I hope a passion for it. But for my ill-health, I would have jumped at it."

सन् 1967 में हमने गुरुदेव से अष्टाध्यायी के उन सूत्रों पर बृहद् भाष्य लिखने का अनुरोध किया था, जिनकी रचना में पाणिनि स्वयं अपने नियमों से विचलित हो गये थे। अपनी अत्यधिक व्यस्तताओं के कारण जिस स्नेहसिक्त काव्य-सदृश गद्य में अपनी विवशता व्यक्त की, उसे पढ़ कर सहृदय पाठक भावावेग से गद्‌गद हो जाता है- ''पत्रमविदमवेदिषं च वृत्तम्। तत्र तत्र

www.thearyasamaj.org

पत्रिकासु प्रकाशितचरांस्ते निबन्धान्वाचं वाचमनिर्वचनीयं कमप्यानन्दातिरेकं समवेदिषम्, इदं च मनस्यकार्षं ध्रुवमचिरादयं नो विनीततमो विनेयोऽसाधारणीं विदुरतां वेत्स्यति यशश्चावदातं संचेष्यतीति। यत्र ममाभिरुचिते विद्वदर्हे कृत्ये प्रयुज्ये तत्र गुरुतरकार्यान्तरैकसर्गो नाहमुत्सहे सद्यः प्रवर्तितुम्। व्याकरणचन्द्रोदयश्चोप-सर्गार्थचन्द्रिका चेति द्वे कृती चिरप्रक्रान्ते नाद्याप्यपवर्गं भजेते अल्पं चावशिष्यते ममायुष इति कर्मान्तरमात्यायिकमपि नेशेऽवधातुम्। किं करवाणि। परं विक्लवोऽस्मि विस्रसया तत्प्रत्ययेन शरीरसादेन च। इच्छाम्यनुत्क्रान्तेषु प्राणेषु स्वयमभ्युपेतं कार्यं निर्वर्तयेयं श्रेयश्चानुत्तममासा-दयेयम्। सर्वमिदं भगवति परमेश्वरेऽधि। तत्कृपाकटाक्षित एवानीशो जन्तुः किमपि समीहितुमीशीत। त्वयापि मत्कारणात्प्रार्थ्यः स वरदः प्रभुः सकामं मां कुर्यादिति"। शिष्य की यत्किञ्चित् उपलब्धि से गद्‌गद होने वाले और ऐसे काव्यमय गद्य के रचयिता सुधी मनीषी अब कहां हैं।

पण्डित सत्यनारायण शास्त्री आयुर्वेद की उस ओजस्विनी परम्परा के प्रतीक हैं, जिसमें संस्कृत-पाण्डित्य रसायन की भाँति सहजता से समाविष्ट है। शास्त्री जी जितने निष्णात वैद्य हैं, उतने ही उच्चकोटि के कवि हैं। उन्होंने महाकाव्य, खण्डकाव्य, शृंगारकाव्य, स्तोत्र, समस्यापूर्ति संस्कृत-काव्य की प्रायः सभी प्रमुख विधाओं की मूल्यवान् कृतियों से सुरभारती के भण्डार को समृद्ध किया है। उनके श्री रामाश्व-मेधीयम् को वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में आदरणीय स्थान प्राप्त है। हमने उनके समग्र साहित्य का आंगलभाषा में तलस्पर्शी विवेचन किया है। पण्डित जी के बीसियों पत्र हमारे संग्रह को विभूषित कर रहे हैं। एक बार हमने उन्हें संस्कृत में अनूदित एक कथा 'कर्करा' अवलोकनार्थ भेजी। उसे पढ कर उन्होंने पन्द्रह अनुष्टुप् पद्यों में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। कुछ पद्य उल्लेखनीय हैं-

प्रेयस्पल (प्रिंसीपल) महाभाग! भवतानूदिता कथा।
प्रेषिता कृपया लब्धा पठिता च मुहुर्मुहुः॥
आख्यायिका-कथा-पाठाद् विरतोऽहं चिरादपि।
न जाने कथमाकृष्टो, हेतुस्ते सिद्धलेखनी॥
लघुभिः सरलैर्वाक्यैः पुष्पैरिव सुगुम्फिता।
उरसा धारणीयाऽभून् मालेव प्रीतिदायिनी॥
युवत्या कामचारिण्या, स्वामिना छद्मरूपिणा।
वराको वञ्चितः सिन्हा सौजन्यात्परकार्यकृत्॥
स्मरामि भवतः स्नेहं विद्वत्तां वाग्मितामपि।
विचारलेखपटुतां बहुज्ञत्वं च सर्वदा॥

शास्त्री जी गुणग्राही व्यक्ति हैं। उन्होंने हमारी अल्पज्ञता को भी बहुज्ञता करके आंका है। 23.5.98 के पत्र में हमारे प्रति जो मंगलभाव उन्होंने प्रकट किये हैं, वे उनके सौहार्द और औदार्य के परिचायक हैं - "सर्वदा सर्वभावेन सुरभारतीसमाराधनपरायणा भवादृशाः कति नाम सन्ति विद्वांसो भारतवर्षे। प्रतिवर्षमभिनव-ग्रन्थरत्नसमर्पणेन भगवत्याः सुरसरस्वत्याः भाण्डागारं चमत्कुर्वाणाः पण्डिततल्लजाः सदैव साधुवा-दार्हाः।"

www.thearyasamaj.org

पण्डित शिवनारायण शास्त्री (दिल्ली) का दिनांक 16.9.75 का पत्र लोकमंगल की भावना से प्रेरित है। उसमें उन्होंने हमारे छात्र शिवकान्त शर्मा की शुल्कमुक्ति की संस्तुति की थी। वही शिवकान्त अब बी.बी.सी. की हिन्दी सर्विस में उच्च पद पर आसीन है।

डॉ. रामगोपाल वेद के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। उनके India of the Vedic Kalpasūtras तथा वैदिक व्याकरण को व्यापक ख्याति मिली है। वैदिक-व्याख्या-विवेचन में उनकी वेदार्थपद्धति से प्रभावित होकर हमने पत्र द्वारा उनसे समूचे ऋग्वेद की इसी शैली में व्याख्या करने का अनुरोध किया। पत्र में उन्हें यह भी स्मरण कराया कि आपने सन् 1959 में डी.ए.वी. कालेज, अमृतसर में नियुक्ति के लिये हमारी इण्टरव्यू ली थी।

8.1.1985 के पत्र में डॉ. रामगोपाल ने सूचित किया कि 'वेदविमर्श' नामक अन्य ग्रन्थ में उन्होंने ऋग्वेद की बीस अन्य सूक्तों की तुलनात्मक तथा विवेचनात्मक पद्धति से व्याख्या की है। हमें जानकर आश्चर्य हुआ कि 26 वर्ष बाद भी उन्हें हमारी इण्टरव्यू का राई-रत्ती स्मरण है- '' आपका 1959 का इण्टरव्यू मुझे अब भी पूरी तरह याद है, जिसमें आपने नीतिशतक के एक पद्य का बहुत अच्छा व्याख्यान किया था।''

अन्त में चर्चा एक उर्दू पत्र की, जो पत्र नहीं, हीरा है। आकाशवाणी की उर्दू सर्विस से प्रोग्राम 'आवाज़ दे कहां है' प्रसारित होता था (शायद अब भी होता है ?)। वह प्रोग्राम इतना लोकप्रिय हुआ कि उसके श्रोताओं की एक समिति- 'अंजुमन-ए-सामईन आवाज़ दे कहां है'- गठित हो गयी, जिसकी विभिन्न नगरों में बैठकें होती थीं। अंजुमन के सचिव श्री धर्मवीर शर्मा (पटियाला) का दिनांक 1.3.81 का उर्दू में लिखा पत्र हमारे संग्रह की सम्पत्ति है। पत्र इतनी ललित और जानदार भाषा तथा खूबसूरत हस्तलेख में, लिखा गया है कि उसके महत्त्व और अन्तर्निहित सन्देश को शब्दों में वर्णित करना असम्भव है। उसका अंश नागरी लिपि में प्रस्तुत है- ''इसमें कोई शक नहीं कि यह प्रोग्राम महज़ एक ज़रिया-ए-तफरीह ही नहीं बल्कि इंसान दोस्ती, बाहमी प्यार-मोहब्बत व खलूस के इंसानी रिश्तों को मज़ीद से मज़ीदतर मुस्तहकम करने में मुआविन साबित हो रहा है। और यह सब मुमकिन आप जैसे दानिशवर और करमफरमा सामईन के सबब ही हो सका है''।

-7/34, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर (राज.)

www.thearyasamaj.org

भारतीय संस्कृति में संगीत से चिकित्सा

–सुश्री अनीता रानी

भारतीय संस्कृति बहुत ही विस्तृत है। अनेकों ज्ञान के स्रोत इसमें सम्मिलित हैं। बहुत-सी ललित कलाएं जैसे शिल्पकला, मूर्तिकला, नृत्यकला व संगीतकला आदि ने भी भारतीय संस्कृति को उपहार दिए हैं। बात करें संगीत की, तो मन में मंत्रमुग्ध, मधुमय स्वर आ जाते हैं। संगीत अपने स्वभाव व सार्वदेशिक प्रभाव के कारण ललितकलाओं में शीर्ष स्थान पर है। संगीत मात्र एक कला ही नहीं अपितु इसमें एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति है, जिसके द्वारा रोगों का निवारण भी किया जा सकता है। संगीत की इस अद्‌भुत शक्ति को स्वीकारते हुए तुलसीदास जी कहते हैं –

राग हरे सब रोग को, कायर को दे सूर।
सुखिया को साधन बने, दुखिया को दुःख दूर।

संगीत से रोग को हटने की अनुपम शक्ति के उदाहरण भारत सहित विश्व के अनेकों देशों में उपलब्ध हैं। जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि संगीत के प्रति मानव का ध्यान पहले ही काफी आकृष्ट हो चुका था। संगीत में ऐसा जादू है जो मात्र आनन्द ही नहीं देता अपितु चिकित्सा भी करता है। आधुनिक समय में मानसिक तथा शारीरिक बीमारियों के कारण मनुष्य बहुत ही क्रोधित, चिड़चिड़ा रहने लगा है। इसका एक कारण आधुनिक संगीत के भ्रष्ट रूप का होना भी हो सकता है। इतिहास साक्षी है कि संगीत को चिकित्सा की भांति प्रयोग में लाया जा सकता है। जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. 'भारतीय संगीत का इतिहास' नामक ग्रन्थ में द्राविडों ने संगीत के वैज्ञानिक रूप को समझते हुए उसे चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया था।
2. प्रसिद्ध संगीतज्ञ वैजू बावरा ने राग पूरिया सुनाकर राजा राजसिंह की अनिद्रा की बीमारी दूर की थी।
3. सन् 1936, 37, 38 में डॉ. जे पाल द्वारा संगीत पद्धति से चिकित्सा की जाती थी। उनकी दुकान को 'म्यूजिकल मेडीकल इन्सटीट्यूट' कहा जाता था।
4. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी संगीत को चिकित्सा के रूप में स्वीकार करते थे। एक बार महान् संगीतकार 'मनहर बर्वे' ने संगीत से उनकी चिकित्सा की थी।

भारत के अतिरिक्त विश्व के अनेक देशों में संगीत-चिकित्सा के विभिन्न दृष्टांत मिलते हैं। जैसे –

1. अमेरिका में कुछ दंत चिकित्सक दांत उखाड़ते समय विद्युत वाद्य यंत्रों को बजाकर एक विशेष प्रकार की ध्वनि पैदा करते, जिससे रोगी का मन उसी में रम जाता और वह बिना किसी इन्जेक्शन के रोगी के दांत उखाड़ देते हैं।

www.thearyasamaj.org

2. महिलाओं के प्रसव के समय ऐसी ही संगीत तरंगों का प्रयोग किया जाता है, जिससे प्रजनन में बहुत कम पीड़ा हो।

3. एक बहुत ही रोचक उदाहरण में रोगी को अस्पताल में ऑपरेशन के लिए स्ट्रेचर पर ले जा रहे थे, पास ही बने घर से संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी, रोगी को उस ध्वनि ने मंत्र-मुग्ध कर दिया और वह उठ कर उस घर को भाग गया। यह दृष्टांत भी संगीत-चिकित्सा से उसका रोग ठीक हो जाने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। संगीत की ऐसी अद्भुत व चमत्कारी शक्ति का वर्णन करते हुए आचार्य उत्तम राम शुक्ला कहते हैं -

दुर्बल रोगी जाहि सुन, भीम पराक्रम होत।
पत्थर पिघले औ, बुझे दीपक होत संजोत॥

अतः यह कथन अतिशयोक्ति नहीं। रागों के शोध में पाया गया है कि राग (संगीत) में रोग निवारण की भरपूर क्षमता है। चिकित्सा-पद्धति से सम्बन्धित कुछ राग हैं। जैसे -

रोग	राग
1. खून की कमी (रक्तक्षीणता)	1. प्रियदर्शिनी, सामदेव (ऋचाएं)
2. अस्थमा (दमा, श्वास रोग)	2. पूरिया, मालकौंस, यमन
3. कैंसर	3. सिद्धभैरवी, राक्षी, नायकी कान्हड़ा
4. नर्वसनेस (अधीरता, भयातुरता)	4. अहीर, भैरव, पूरीया
5. हृदय रोग	5. भैरवी, शिवरंजनी, अल्हैया विलावल, राग बहार, राग सारंग।
6. स्मरण शक्ति कमज़ोर होना	6. राग शिवरंजनी, राग मारवा।
7. धड़कन रोग	7. राग भैरव, राग कालिंगड़ा, आनन्द भैरव, राग प्रभाति, राग रामकली।
8. हाईब्लड प्रैशर	8. हिंडोल, पूरीया, कौंसी, कामहड़ा।
9. मानसिक रोग	9. ललित, केदार।
10. त्वचा के रोग	10. मेघमल्हार, मुल्तानी, मधुवन्ती।
11. डायबिटीज	11. जौनपुरी, जयजयवन्ती।
12. तीव्र ज्वर	12. मालकौंस, बसन्त बहार
13. इन्सोम्निया (अनिद्रारोग)	13. भैरवी, दीपक, भाग्यश्री संतुलन करने वाला राग।
14. कमज़ोरी	14. राग जयजयवन्ती, देश राग, झिंजोरी अथवा राग खोर।
15. तपेदिक (टी.बी.)	15. ललित राग, पञ्चम, सोहनी, पूरिया, मालराग मारण।

www.thearyasamaj.org

इन रागों का सप्ताह व दिनभर कुछ घन्टे श्रवण करने से रोग से मुक्ति मिल सकती है। आज एड्स जैसी बीमारी जिसका कोई इलाज नहीं है फिर भी संगीत-चिकित्सा से इस रोग में लाभ पहुंचता है। प्रभुशरण मेहता के अनुसार एड्स में उपचार हेतु निम्न स्वरावली का वर्णित क्रम में दीर्घ स्वरोच्चार तुरन्त रोगी को शांति प्रदान करेगा।

म रे ग, प नि ध उक्त स्वरावली का काल के चारों प्रहर में प्रयोग लाभकारी है। शारीरिक रोगों के अतिरिक्त मानसिक रोगों में भी संगीत-चिकित्सा प्रभावशाली है। दिल्ली के मनोवैज्ञानिक डॉ. संजयचुग का कहना है- संगीत के माध्यम से उपचार की प्रक्रिया के तहत मैंने कई लोगों का ईलाज किया खासकर उन लोगों का जो डेमिटिया, डायलेक्सिया या किसी मानसिक तनाव के दौर से गुज़र रहे थे।

नई दिल्ली स्थित 'शक्ति विकास प्रकल्प' के संस्थापक व अध्यक्ष ई. कुमार के कथनानुसार 'संगीत प्रकपनों से पागलपन की सीमा तक जा चुके रोगियों को स्वस्थ किया जा सकता है।'

नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ मेन्टल हैल्थ एण्ड न्यूरोसाइंसेज, बैंगलोर की 'डा. वी. एन. मंजुला' के अनुसार भी संगीत उपयोगी हो सकते हैं तथा अवसाद की अवस्था में स्वयं रोगी के स्वर में गीत अधिक उपयोगी होता है। 'एंगजाइटी न्यूरोसिस' में तारयुक्त वाद्ययन्त्र में बजाया मधुर संगीत विशेष रूप में लाभदायक पाया गया है। इसीलिए उन्माद की अवस्था में तीव्र संगीत को प्राथमिकता देनी चाहिए।

इस प्रकार भारतीय ही नहीं अपितु पाश्चात्य संगीत में रोगों का निवारण किया जा सकता है। विश्व के अनेक देशों में संगीत-चिकित्सा के पाठ्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं तथा डिग्रियां भी प्रदान की जा रही हैं। जैसे हरुञ्व (नैशनल एसोसिएशन फार म्यूज़िक थैरेपी) परन्तु भारत में जहां प्राचीन काल से ही संगीत को चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जा रहा है वहां वह अपने सुगठित रूप में स्थापित नहीं हो सका। भारत में अभी 'महर्षि गन्धर्व वेद विश्वविद्यालय' नोएडा (उत्तर प्रदेश) तथा 'ब्रह्म वर्चस संस्थान' हरिद्वार में ही म्यूज़िक थैरेपी का प्रयोग हो रहा है। आज इस चिकित्सा को पुनःरूप प्रदान करने की आवश्यकता है।

– सहायक प्रोफेसर, सी. टी. कॉलेज आफ़ एजुकेशन, जालन्धर।

www.thearyasamaj.org

लोकद्रष्टा के रूप में सन्त तुलसी का योगदान

–कु. शिखा कपूर

भारतवर्ष की इस पावन धरती पर अनेक सन्त कवियों ने जन्म लिया है। जिन्होंने समाज की साधना, धर्म की साधना तथा साहित्य की साधना करके समाज को उच्च आदर्श की शिक्षा दी। उन सन्तों ने स्वान्तःसुखाय एक विशाल साहित्य का निर्माण भी किया। उन्हीं सन्तों में कबीर, रैदास, नानक, दादूदयाल, जायसी, रसखान, तुलसी इत्यादि की भी गणना की जाती है। इन सन्त कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से जो भी लिखा वह मात्र समाज को प्रेरित व जागरूक करने के लिए लिखा। इन्हीं सन्त कवियों में से एक कवि हुए तुलसीदास, जिन्हें लोकनायक की संज्ञा दी जाती है। सामान्य रूप से लोक का अर्थ होता है- संसार। जो लोक की तद्‌युगीन मान्यताओं को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करता है वही लोकनायक कहलाता है।

जिस समय तुलसी का आविर्भाव हुआ उस समय सामाजिक स्थिति अत्यंत निराशाजनक थी। तुलसी ने जहां एक ओर तो अपने समय की परिस्थितियों का अध्ययन किया वहीं दूसरी ओर समाज में व्याप्त घातक मान्यताओं का विरोध भी किया। इसीलिए वह लोकनायक कहलाये। तुलसी काव्य का प्रेरक-बिन्दु लोकमंगल की भावना है। लोकमंगल तभी संभव हो सकता है जब सामाजिक मूल्यों की रक्षा की जाए। तुलसी ने अपने काव्य में व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राजनीति के आदर्श उपस्थित करके एक ऐसे धर्म की स्थापना की जिसका पालन करने से सुख-शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

तुलसी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' लोकमानस का काव्य है। लोक-जीवन को अभिव्यक्त करने वाली परम्पराओं और मान्यताओं का वर्णन रामचरितमानस में देखने को मिलता है। उनके सम्पूर्ण काव्य में गृहस्थ, वैराग्य, कला, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, निर्गुण-सगुण का वर्णन देखने को मिलता है। रामचरितमानस जैसे ग्रन्थ की रचना करके तुलसी ने समाज एवं धर्म को नवीन दिशा पर चलने के लिए अग्रसर किया । उन्होंने राम-कथा के माध्यम से लोक-कल्याण की भावना को उजागर किया अतः यह कहना अनुचित न होगा कि तुलसी एक कवि होने के साथ-साथ पथ-प्रदर्शक भी थे।

लोक-कल्याण के लिए उन्होंने धर्म को अपने जीवन का आधार बनाया। क्योंकि जिस धर्म के लिए लोक की रक्षा होती है और जिससे समाज चलता है वही व्यापक धर्म है। सत्य और असत्य दोनों के मेल से ही संसार बनता है। लेकिन जिस धर्म के उपदेश द्वारा दुष्ट व्यक्ति अपनी दुष्टता का त्याग नहीं करते वह लोकधर्म नहीं कहलाता। धर्म के मार्ग को अपनाकर ही मनुष्य सही या गलत निर्णय लेने में भी सक्षम होता है।

www.thearyasamaj.org

कु. शिखा कपूर

तुलसीदास जी की भक्ति में लोकमंगल की भावना का भाव अत्यंत व्यापक था। तुलसी ने समाज को लोकधर्म की ओर प्रेरित किया जिस में उन्हें सफलता भी मिली। तुलसी द्वारा लिखित साहित्य समाज के लिए एक सामान्य पृष्ठों के समान नहीं है अपितु उनके साहित्य का यथार्थ रूप आज भी समाज में विद्यमान है। जिसमें हमें लोकहित, जनकल्याण व परोपकार की भावनाओं का मिश्रण देखने को मिलता है। तुलसी की भक्ति समाज को आदर्श आचरण का सन्देश देती है।

उनकी भक्ति व्यक्ति में व्यक्ति के प्रति आस्था, विश्वास और प्रेम को जन्म देती है। उनके काव्य में भी भक्ति और लोकधर्म का समन्वित रूप सामाजिक यथार्थ से ओत-प्रोत है। मानव-मानव के बीच कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं है जिसका विश्लेषण तुलसी ने रामचरितमानस में न किया हो। व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य सभी के मध्य तुलसी ने समन्वय की भावना को विकसित किया। तुलसी-काव्य का प्रत्येक पात्र समाज के समक्ष कोई न कोई आदर्श प्रस्तुत करता है। जैसे- दशरथ सत्य-प्रतिज्ञा का, राम पितृ-मातृ भक्ति का, भरत भ्रातृभक्ति का, लक्ष्मण सहनशीलता का, कौशल्या वात्सल्य से परिपूर्ण माँ का और सीता एक पतिव्रता नारी का, केवट मित्र का तथा हनुमान् सेवक का।

तुलसी को एक लोकवादी कलाकार भी कहा जा सकता है। उनका चित्त जनकल्याण और लोकमर्यादा की भावना से परिपूर्ण था। इसीलिए उन्होंने राम के चरित्र में शील, शक्ति और सौन्दर्य का संचार किया। इन तीन गुणों के आधार पर ही राम को एक मर्यादावादी लोकनायक कहा जाता है।

तुलसी के युग में समाज में अनेक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ और अन्ध-विश्वास प्रचलित थे। ऐसे समय में तुलसी ने समाज को कल्याण एवं विकास का मार्ग दिखाया। उन्होंने समाज की कल्पना राम-राज्य के माध्यम से की। समाज को प्रेरित करते हुए उन्होंने कहा-

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
निर्नय सकल पुरान बेद कर,
कहेऊँ तात जानहिं कोबिद नर॥[1]

उन्होंने समाज में ऊँच-नीच के एवं जाति-पांति की विषमता को दूर करने के लिए राम-राज्य के आदर्श को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया-

राम राज बैठें त्रैलोका,
हरषित भये गए सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई,
राम प्रताप विषमता खोई॥[2]

तुलसी ने तद्युगीन समाज में प्रचलित कुप्रथाओं का विरोध किया। वे बहुविवाह प्रथा के पक्ष में नहीं रहे। बहुविवाह प्रथा का दुष्परिणाम उन्होंने राम के वनवास प्रसंग में स्पष्ट कर दिया। राम के राज्य में सभी पुरुष एक-पत्नीव्रती हैं और

---

1. उत्तरकाण्ड, 40-1.
2. उत्तरकाण्ड, 19 ग - 4.

www.thearyasamaj.org

पत्नियाँ भी, मन, कर्म और वचन से पति का हित करने वाली हैं। उन्होंने लिखा है–

एक नारि ब्रत रत सब झारी।
ते मन बच कम पति हितकारी॥[3]

क्योंकि आस्था और विश्वास ही पति-पत्नी को परिवार रूप में जोड़ते हैं। अविश्वास और विश्वासघात परिवार को नष्ट कर देते हैं। तुलसी ने दशरथ के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि कैकेयी से दशरथ का विवाह अनमेल विवाह है। दशरथ की मृत्यु का कारण भी राम का वनवास जाना नहीं अपितु कैकेयी द्वारा किया गया विश्वासघात है। अतः तुलसी ने प्रेम को परिवार का आधार माना है। भरत के चरित्र में भी हमें सभी सामाजिक मर्यादाओं का रूप देखने को मिलता है।

अरथ न धरम न काम
रूचि गति न चहऊँ निरबान।
जनम-जनम रति राम पद
यह बरदानु न आन॥[4]

राम को भी अपने भाई भरत पर पूर्ण विश्वास है। इस संदर्भ में तुलसी ने लिखा है–

भरतहि होई न राजमदु
बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि
छीरसिंधु बिनसाइ॥[5]

तुलसीदास द्वारा रचित काव्यों के अध्ययनोपरान्त यह कहना अनुचित न होगा कि समाज के सभी लोग यदि अपने कर्त्तव्यों का पालन पूर्ण निष्ठा से करने लगेंगे तभी समाज में लोकहित का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। भगवान् राम भी भरत को पितृ-आज्ञा पालन के कर्त्तव्य को बताते हुए समाज को भी कर्त्तव्य-पालन का संदेश देते हैं –

मोर तुम्हार परम पुरुषारथ।
स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥
पितु आयसु पालिहिं दुह भाई।
लोक बेद भल भूप भलाई॥[6]

अतः तुलसी ने अपने काव्य रामचरितमानस के माध्यम से समाज को प्रेरित किया एवं समाज को त्याग, बलिदान एवं आत्मानुभूति के मार्ग पर चलने के लिए अग्रसर किया। उन्होंने तद्युगीन समाज में प्रचलित परिस्थितियों एवं मान्यताओं को एक नया स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने विभिन्न आदर्शों की स्थापना कर एक सच्चे लोकनायक का कार्य किया। इसी कारण ग्रियर्सन ने तुलसी को बुद्धदेव के पश्चात् उत्तर भारत का सबसे बड़ा लोकनायक माना है।

–अंशकालिक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग),
मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, सहारनपुर (उ. प्र.)

---

3. उत्तरकाण्ड, 21-4.
4. अयोध्याकाण्ड, 204.
5. अयोध्याकाण्ड, 231.
6. अयोध्याकाण्ड, 314-2.

www.thearyasamaj.org

गुरुकुल, शिक्षा और प्रणाली

–डॉ. नरेश कुमार शास्त्री

प्राचीन काल से भारत सम्पूर्ण विश्व के लिए ज्ञान का अगाध स्रोत रहा है। इसकी महान् परम्पराएँ हैं, उन्हीं पुरातन पुनीत परम्पराओं में से एक है–'गुरुकुल परम्परा'। 'गुरुकुल', एक ऐसा कुल है, जिसमें गुरु और शिष्य एक साथ रहकर गहन–तत्त्व का चिन्तन किया करते थे। सारे संसार को अध्यात्म और शान्ति का शाश्वत उपदेश देने वाले उपनिषद् इन गुरुकुलों की ही देन हैं, जो उपनिषद् अपनी विपुल तात्त्विक सामग्री से उन गुरुकुलों का परिचय स्वयं दे रहे हैं, जहाँ ऋषिजन, गुरु अथवा आचार्य अपने शिष्यों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया करते थे। उन ऋषिजनों के लिए शिक्षक वा अध्यापक जैसे नितान्त संकुचित अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग करना, अपनी अयोग्यता को ही प्रकट करना है।

'गुरु' का सर्वसाधारण अर्थ है–भारी। यह गुरुता या भारीपन भारी–भरकम तेजस्वी शरीर मात्र से नहीं, अपितु कई अन्य कारणों से हुआ करता है और वह है उसका एक साथ ऋषि, गुरु और आचार्य होना तथा शिष्य के सम्पूर्ण दोषों को आत्मसात् करना।

तत्त्व का द्रष्टा होना ही ऋषित्व है– **'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवु'** (निरु. 2. 11 व 1.20)। वे अपने विशिष्ट–विषय के ज्ञान–शास्त्र के संशय–रहित पूर्ण विद्वान् हुआ करते हैं और जो निष्कारण पूर्ण वात्सल्य भाव से अपने सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान को अपने समित्पाणि जिज्ञासु शिष्य में अवतरित करके इतने विकसित रूप में देखना चाहते हैं वे गुरु होते हैं। गुरु इतने ही महान् होते हैं कि यदि कभी उस शिष्य से ही शास्त्रार्थ का अवसर आन पड़े तो उससे पराजित होने में ही अपने को धन्य समझते हैं।

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद। माता–पिता के पश्चात् इस स्वार्थी संसार में केवल 'गुरु' ही तो है जो अपने शिष्य की प्रगति देखकर ईर्ष्याभाव से ग्रसित नहीं होता। अपितु अपने से आगे बढ़ता हुआ देखकर और भी प्रसन्नता तथा गौरव का अनुभव करता है। इन तीन के अतिरिक्त कोई ऐसा विशाल हृदय, उदारचेता मानव इस धरती पर दिखाई नहीं पड़ता। पुत्र अथवा शिष्य से हार जाने में भी जीत के आनन्द का अनुभव करने वाला केवल पिता या गुरु ही होता है।

www.thearyasamaj.org

डॉ. नरेश कुमार शास्त्री

'आचार्य' और 'शिक्षा-प्रणाली'-ये दोनों एक दूसरे से अनुस्यूत हैं। आचार्य गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का आत्मा है और शिष्य उसका शरीर है। आचार्य ही शिष्य में 'आत्मा' बनकर अधिष्ठित होता है। जिससे वह अज्ञानाछन्न शिष्य, वस्तुतः चेतनावान् हो उठता है तथा ज्ञान के प्रकाश से भर जाता है।

शिक्षा देने की विधि क्या हो? इसका संकेत भी 'आचार्य' शब्द में ही मिलता है। आचार्य वही है, जो अपने आचरण से शिष्यों में अवतरित हो जाए। आचार्य अपने शिष्यों पर जो शासन करता है, उसे 'शासन' न कहकर 'अनुशासन' कहा जाता है। 'अनु' एक उपसर्ग है, जिसका अर्थ है 'पश्चात्'। दूसरे शब्दों में आत्मशासन के पश्चात् जिसका आरम्भ होता है, उसका नाम अनुशासन है। जिस आचार्य वा राजा का अपने आप पर शासन नहीं, जो स्वयं नियमों की बागडोर से नहीं बंधा, वह अपने शिष्यों अथवा प्रजा पर क्या अनुशासन करेगा? उसे शासन तो कहा जा सकता है, परन्तु अनुशासन कदापि नहीं। अनुशासन तो आत्मशासित आचार्य से शिष्य में वैसे ही अवतरित होता है, जैसे दर्पण में प्रतिच्छाया। उसमें दण्ड-प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। शासन दण्डप्रयोग के बिना कभी हो नहीं सकता। शासन बलात् किया जाता है और अनुशासन सहजभाव से। शासन में शासक के प्रति प्रायः विद्रोह तथा दुर्भाव के स्वर गूंजते हैं और अनुशासन में सौहार्द तथा सद्भावना के स्वर। शासन अशान्ति, भय और दुःख का विस्तार करता है तथा अनुशासन शान्ति, निर्भयता और आनन्द का। अतः शासन और अनुशासन के इस गूढ़ रहस्य को समझते हुए, आचार्य अपने आचरण से ही शिष्यों में शिक्षा का आधान किया करता है। यही उसका आचार्यत्व है-यास्क कहते हैं **आचार्यः कस्माद्? आचार्य आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थान्, आचिनोति बुद्धिमिति वा।** (निरु. 1.2.3) अर्थात् आचार्य आचार परम्परागत उपदेश को ग्रहण कराता है। अर्थों का चयन करता है तथा बुद्धि को बढ़ाता है।

शिक्षार्थी शिष्य कैसा हो ? जो गुरु और शास्त्र दोनों के प्रति श्रद्धान्वित हो-समर्पित हो, तत्त्वज्ञान की उत्कट अभिलाषा रखता हो तथा पूर्ण व्रती हो। क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता (4.39) के अनुसार इन तीनों में से किसी एक का भी अभाव हो तो शिष्य को तत्त्वज्ञान उपलब्ध नहीं होता। अतः शिष्य का श्रद्धालु होना नितान्त आवश्यक है। श्रद्धापूर्वक शिष्य जिस किसी विद्या को सीखेगा, वह उसमें पारङ्गत होगा।

जिज्ञासु शिष्य अपने ऋषितुल्य आचार्यों से कैसी शिक्षा प्राप्त करेगा? वह शिक्षा होगी, जिससे पूर्ण मनुष्य का निर्माण हो सके। जो अध्यात्म विज्ञान तथा भौतिक जगत् से सम्बन्ध रखने वाली विद्याओं के गूढ़ रहस्यों को एक साथ आत्मसात् करा सके। ऐसी शिक्षा, जिससे मानवता का पूर्ण विकास हो। जिससे इहलोक और परलोक दोनों सिद्ध हों।

www.thearyasamaj.org

सारभूत शब्दों में **'मनुर्भव जनय दैव्यं जनम्'** (ऋ. 10. 53. 6)– मानव शिक्षा के इस वैदिक सिद्धान्त को जहाँ मूर्त्तरूप दिया जाता हो, उस संस्थान का नाम 'गुरुकुल' है। जिस शिक्षा के द्वारा इस सिद्धान्त को साकार किया जाता हो, उनका नाम गुरुकुल-शिक्षा है। अपने कुलरूपी गर्भ में रख कर आचार्य, आत्मशासन से अनुशासनपूर्वक शिष्य को जो शिक्षित करता है, उसी का नाम 'गुरुकुल - शिक्षा - प्रणाली' है।

वर्तमान युग में मोक्षपद से अवतरित पुण्यात्मा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सम्पूर्ण मानवजाति के कल्याण के लिए, इसी पुनीत पुरातन गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली को साकार करने का स्वप्न लिया था। जिसकी संक्षिप्त योजना उन्होंने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में उद्‌भावित की है। इसी स्वप्न को पंजाब की पावन धरती पर जन्म लेने वाले विनम्र योद्धा, महर्षि के अनन्य अनुयायी, महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने गंगा के पावन तट पर काँगड़ी ग्राम (पुण्यभूमि) हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी के नाम से अपने आचार्यत्व में साकार करने का अपूर्व साहस दिखाया है। उसके बाद अनेक गुरुकुल आज भी उसी परम्परा में कार्य करते हुए दिखाई दे रहे हैं और निरन्तर गुरुकुलों की संख्या में तो अभिवृद्धि हुई है, लेकिन उपयुक्त स्थान, तपोनिष्ठ आचार्यों तथा व्रतनिष्ठ श्रद्धावान् जिज्ञासु शिष्यों के अभाव में 'गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली' स्वयं में पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण सिद्ध हो रही है। फिर भी मैं इतना कहने का साहस अवश्य करूँगा कि इस अर्थमात्रप्रधान युग में ये गुरुकुल मानवनिर्माण की प्रक्रिया में जो भी कार्य कर पा रहे हैं, उससे समय तथा धन का सदुपयोग ही हो रहा है।

–अध्यक्ष एवं प्रवक्ता-संस्कृत विभाग, दोआबा कॉलेज, जालन्धर-4.

www.thearyasamaj.org

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब एवं खान-पान

– महात्मा चैतन्यमुनि

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब की रचना सन् 1604 ई. में हुई। इसकी मूल प्रति अभी भी करतारपुर में रखी हुई है। इसमें प्रथम पांच गुरुओं तथा नौवें गुरु तेगबहादुर जी की वाणियों का संग्रह है। इस ग्रन्थ को संकलित करने के लिए गुरु अर्जुनदेव जी बाबा मोहरी के पास गोंदवाल गए और उनके पास से उन्होंने गुरु नानकदेव, गुरु अंगददेव तथा गुरु अमरदास जी की वाणी की रचनाएं प्राप्त कीं। उन्होंने इसे यहीं तक सीमित नहीं रखा बल्कि इसमें हिन्दु-भक्तों तथा मुसलमान सूफियों के वचनों और गीतों का भी संग्रह किया। बाद में गुरु गोविन्दसिंह ने इसमें गुरु तेगबहादुर के वचनों तथा गीतों का योग भी किया। तब से श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब का रूप इसी प्रकार का रहा और इसमें कोई परिवर्तन तथा परिवर्धन नहीं हुआ। इस ग्रन्थ में कुल 5894 छन्द हैं। इसमें गुरु अर्जुनदेव ने 2216 छन्दों की रचना की है जो सबसे अधिक है। गुरु नानक के 976 छन्द हैं। गुरु तेगबहादुर के 118 छन्द तथा अन्य भजनों और गीतों की संख्या 937 है। शेष में अन्य संन्तों की रचनाएं सम्मिलित हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में केवल सिक्ख गुरुओं के ही गीत व वचन नहीं हैं बल्कि जिस समय सिक्ख मत का उदय हुआ था, उस समय के प्रमुख सन्त जैसे नामदेव, कबीर, रामानन्द, रविदास, जयदेव, सूरदास, मीराबाई तथा और भी अन्य सन्तों के वचन तथा गीत इसमें सम्मिलित हैं। आजकल इस ग्रन्थ की भाषा प्राचीन-जैसी लगती है मगर जिस समय इसका प्रथम बार संकलन हुआ था, यह भाषा साहित्यिक मानी जाती थी। सारा श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब छन्दों में लिखा गया है। इसकी रचना कई प्रकार के रागों तथा मात्राओं में की गई है। इसमें कुल 31 रागों का प्रयोग किया गया है और गुरु नानक की वाणी 20 रागों में रचित हुई है। इसके राग, स्वर और ताल भिन्न-भिन्न होते हुए भी सुनने में बहुत ही कर्णप्रिय लगते हैं। इसकी भाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, गुजराती, सिन्धी, ब्रज तथा पंजाबी है। इसमें वेद-पुराण और कुरान आदि की महिमा गाई गई है।

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब के लगभग प्रत्येक छन्द के अन्त में 'नानक' शब्द मिलता है जिससे लोगों को यह भ्रम हो जाता है कि यह सब गुरु नानक जी की ही रचना है मगर वास्तविकता यह नहीं है। इसी भ्रान्ति को दूर करने के लिए वाणी से पूर्व 'महला' शब्द का प्रयोग मिलता है- जैसे महला 1, महला 2, महला 3, महला 4, महला 5

www.thearyasamaj.org

तथा महला 9। महले में रचनाऐं इस प्रकार से हैं- महला 1 में गुरु नानकदेव जी की रचनाएं, महला 2 में गुरु अंगददेव की रचनाएं, महला 3 में गुरु अमरदास की रचनाएं, महला 4 में गुरु रामदास की रचनाएं, महला 5 में गुरु अर्जुनदेव की रचनाएं और महला 9 में गुरु तेगबहादुर की रचनाएं। वास्तव में गुरु अर्जुनदेव इस भौतिक शरीर को परमात्मा का मन्दिर मानते थे। उर्दू में मन्दिर को महल कहते हैं। सब गुरुओं की रचनाओं को भौतिक शरीर की दृष्टि से महल माना गया है। इसीलिए उनकी रचनाओं का परिचय महला शब्द से दिया गया है।

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब का आरंभ जपजी से होता है। इसमें 38 पौड़ियां हैं तथा 1 श्लोक आरंभ में और 1 श्लोक अन्त में लिखा हुआ है। यह रचना गुरु नानकदेव जी की है। जिस प्रकार गीता को धर्म का सार माना जाता है उसी प्रकार जपजी सारे श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब का सार है। जपजी बिना किसी साज के गाया जाता है तथा शेष श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब रागों के अनुसार ही गाया जाता है। गुरु नानक के अनुयायी जपजी का पाठ प्रातःकाल करते हैं। जपजी की रचना किस स्थान पर और कहां हुई इसका ठीक अनुमान लगाना कठिन है। इस सम्बन्ध में अलग-अलग साहित्यकारों का अलग-अलग मत है। किसी के अनुसार जपजी तब लिखी गई थी जब गुरु नानकदेव ने अन्तिम समय में करतारपुर में वास किया। कुछ का यह कहना है कि सिद्ध योगियों के साथ उनकी चर्चा के फलस्वरूप लिखी गई थी। अन्य कुछ लोगों का मत है कि यह उनके बगदाद में काज़ी मुल्लाओं के साथ वार्तालाप का सारांश है। जपजी में कहा गया है कि परमात्मा एक है तथा भक्तिमार्ग पर चलकर ही उसके दर्शन हो सकते हैं। जपजी का आरंभ एक मूलमन्त्र से होता है, जिसका अर्थ है कि परमात्मा एक तथा सर्वशक्तिमान् है, जो प्रथम नाम के रूप में अवतीर्ण हुआ और बाद में संसार के रूप में। जपजी तथा शेष श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब के लिखने का ढंग भिन्न-भिन्न है, हालांकि दोनों की भाषा गुरुमुखी ही है। ग्रन्थ के मुख्यतः तीन भाग हैं, जिन्हें इस प्रकार विवेचित किया जा सकता है –

1. रहरास –

यह सन्ध्या समय गाया जाता है। इस गाई जाने वाली आरती को 'आरती' धुन भी कहा जाता है। यह 9 छन्द राग आसावरी तथा गूजरी में रचित है, जिसको साधारण लोग भी बड़ी आसानी से गा सकते हैं।

2. कीर्तन सोहला –

यह राग गौरी, आसा तथा धनसारी में रचित छन्द है। ये रात्रि के समय सोने से पूर्व गाए जाते हैं। इसके बाद श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब का मुख्य भाग है, जो 31 रागों में विभक्त है। प्रत्येक राग सिक्ख गुरु की रचनाओं से आरंभ होता है तथा किसी भक्त की रचना से समाप्त होता है।

www.thearyasamaj.org

3. **भोग –**

संस्कृत में भोग का अर्थ होता है आनन्द। परन्तु हिन्दू और सिक्खों के धार्मिक ग्रन्थों के अन्त के लिखे हुए भाग को भी भोग कहा जाता है। इसमें गुरु नानकदेव के संस्कृत में चार श्लोक हैं, फिर गुरु अर्जुनदेव के एक मात्रा में गाए जाने वाले संस्कृत में 67 श्लोक हैं तथा दूसरी मात्रा में गाए जाने वाले 24 श्लोक हैं। इस के बाद उन्होंने 23 श्लोक पंजाबी तथा हिन्दी में लिखे हैं, जिनमें अमृतसर की प्रशंसा की गई है। उसके बाद 243 छन्द कबीर के, 130 शेख फरीद के तथा कुछ अर्जुन देव के वचन हैं। फिर भाट तथा गुरु तेग-बहादुर की मिली जुली 9 रचनाएं हैं।

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब मात्र शब्दों का नहीं बल्कि अनुभव का ग्रन्थ है। विभिन्न सन्तों ने अनुभूति के स्तर पर जो कुछ आत्मसात् किया उसे ही प्रस्तुत किया है। इन सन्तों ने भले ही विधिवत् आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय न किया हो मगर इन्होंने साधना के उच्च शिखर में पंहुचकर जो कुछ अनुभव किया वही ग्रन्थों का सार है। इसलिए श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब में वेदों, उपनिषदों, दर्शनग्रन्थों तथा ब्राह्मणग्रन्थों आदि के दार्शनिक-तत्व हमें स्वतः ही मिल जाते हैं। यूँ तो श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब में बहुत से विषयों का विवेचन हमें मिलता है मगर यहां हम खान-पान के सम्बन्ध में संक्षिप्त-सी चर्चा करेंगे। व्यक्ति का खान-पान इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जहां यह हमारे शरीर को परिपुष्ट करता है वहीं दूसरी ओर हम जो कुछ भी खाते-पीते हैं उसका प्रभाव हमारे मन और चित्त पर भी पड़ता है। इसलिए खान-पान के सम्बन्ध में व्यक्ति को विशेष सावधानी वर्तनी चाहिए। आज बहुत से व्यक्ति इस ओर ध्यान नहीं देते जिससे जहां एक ओर शरीर बिगड़ रहे हैं वहीं दूसरी ओर साधना आदि पावनकार्य तो दूर रहे बल्कि व्यक्ति अत्यधिक संवेदनाहीन तथा क्रूर होता चला जा रहा है। इसलिए श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब में कहा गया है-

कलि होई कुते मुहीं, खाज होआ मुरदार।
कूड़बोलि बोलि भोंकणा, चुका धर्म बीचार॥

(सारंग की बार म. 1)

अर्थात् अब तो व्यक्तियों का स्वभाव कुत्तों जैसा हो गया है, क्योंकि लोग मुरदार खाने लग गए हैं, जिसको भक्षण कर झूठ बोलते, मानों कुत्तों की तरह भौकते या बकवास करते हैं..... धर्म का तो विचार ही उठ गया है।

हिंसा तो मन ते नहीं छूटी, जिया दया नहीं पाली।
परमानन्द साध संगति मिलि, कथा पुनीत न चाली॥

(सारंग म. 5)

अर्थात् पापी लोगों ने हिंसा या प्राणी-घात नहीं छोड़ा, जीवों पर दया नहीं करते और न ही यह साधु-संग करते, या भले पुरुषों की संगत में जाकर धर्म की पवित्र कथा ही सुनते हैं।

कबीर भांग, माछुली, सुरापानी जो जो प्राणी खांहि।
तीर्थ बरत नेम किये ते, सभै रसातल जांहि॥

(श्लोक कबीर जी)

www.thearyasamaj.org

जो लोग भांग, मच्छली आदि, नशाखोरी, मांस, शराब आदि अभक्ष्य भोजन करते हैं, उनके तीर्थ स्नान, व्रत और नित्य-नियम सभी अकारथ जाते हैं।

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब में अन्य अनेक स्थानों पर मांस, मदिरा आदि का त्याग करने के लिए उपदेश दिया गया है क्योंकि इस प्रकार के खान-पान से व्यक्ति का शरीर तो रोगी बनता ही है साथ ही वह मानवता से भी दूर हो जाता है तथा ऐसे व्यक्ति का लोक-परलोक बिगड़ जाता है।

श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब की समाप्ति 'भोग की वाणी' से होती है और आरंभ 'श्लोक महला पहला' से। इसके बाद गुरु नानक द्वारा मलहार के राजा को दिए गए उपदेश हैं। फिर इन्हीं की लिखी 'रत्नमाला' है, जिसमें भक्त के लक्षणों का मार्मिक वर्णन है। श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब की रचना छन्दोबद्ध है। कविता का छन्द भारती है। काव्यवाणी अलंकारों से जड़ित है। करुणा, शृंगार, शान्त, भयानक, वीर, अद्‌भुत, हास्य और वीभत्स रसों से ओतप्रोत कविता बहुत ही प्रभावशाली है। श्रीगुरु ग्रन्थसाहिब के अन्त में गुरु अर्जुनदेव जी का एक सम्पादकीय वचन है जिसके अनुसार इस थाल में चार पदार्थ हैं- सत्य, सन्तोष, विचार तथा नाम। इस प्रकार इस ग्रन्थ में साधना के उच्च अनुभवों की चिरन्तनता है और जीवन को सार्थकता प्रदान करने की कालजयी शिक्षाएं हैं। जरूरत इस बात की है कि उन महान् सन्तों की शिक्षाओं को हम अपने जीवन में आत्मसात् करें।

– महादेव, सुन्दरनगर-174401 (हि. प्र.)

www.thearyasamaj.org

रीति और शैली में सम्बन्ध

– डॉ. रज्जू पटियाल

शैली वैज्ञानिक अवधारणाओं की दृष्टि से भारतीय साहित्यशास्त्र का रीति-सिद्धान्त अपने नाम से लेकर अपनी मान्यताओं तक पर्याप्त महत्वपूर्ण है। नाम के आधार पर शैली और रीति में पर्याप्त समानता खोजी गयी है, यहां तक कि डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने तो शैली के लिए 'रीति' शब्द का ही प्रयोग किया है।[1] मान्यताओं की दृष्टि से भी रीति-सिद्धान्त और शैली वैज्ञानिक अवधारणाओं में कतिपय महत्वपूर्ण समानताएं हैं।

रीति का एक समानधर्मी शब्द शैली भी है। वैसे तो शैली शब्द अत्यन्त प्राचीन है जिसकी व्युत्पत्ति 'शील' से हुई है। शील का अर्थ स्वभाव है कुन्तक के मतानुसार शैली रीति का नियामक आधार है। जिस प्रकार स्वभाव की अभिव्यक्ति का मार्ग रीति है, उसी प्रकार शील की अभिव्यक्ति-पद्धति शैली भी है जिसके व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ में वैयक्तिक तत्त्व विद्यमान हैं।[2] परन्तु भारतीय काव्यशास्त्र में शैली का प्रयोग इस अर्थ में नहीं हुआ। काव्यशास्त्र में यह शब्द व्याख्यान-पद्धति आदि के प्रसंग में ही प्रयुक्त हुआ है। अभिव्यक्ति की पद्धति के अर्थ में शैली का प्रयोग आधुनिक ही समझना चाहिए जो अंग्रेजी के "Style" शब्द का पर्याय है।

विशिष्ट अर्थ में रीति और शैली में बहुत अन्तर नहीं है। शैली की अनेक परिभाषाएं की गई हैं। शैली विचारों का परिधान है।[3] श्यामसुन्दर दास के मत से यह (शैली) विचारों, भावों और कल्पनाओं का परिधान ही नहीं, अपितु उसका बाह्य और प्रत्यक्ष रूप है। शोपेनहावर के शब्दों में शैली लेखक की आत्मा का शरीर-विज्ञान या उसके मस्तिष्क का चित्र है।[4] शैली उपयुक्त शब्दावली का प्रयोग है। अभिव्यक्ति की रीति का नाम शैली है। शैली भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग है। शैली ही व्यक्ति है, इत्यादि परिभाषाएं तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ही, अन्य भी इसी प्रकार की कई परिभाषाएं देखी और सुनी जाती हैं। शैली के दो मूल तत्त्व हैं-

1. व्यक्ति-तत्त्व
2. वस्तु-तत्त्व

---

1. रीतिविज्ञान, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. 4
2. हिन्दी वक्रोक्तिजीवितम्, पृ. 7
3. भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ. कृष्णदेव झोरी, पृ. 95
4. साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दार्थ, द्विवेदी, राजेन्द्र, पृ. 257

www.thearyasamaj.org

यूरोपीय काव्यशास्त्र में इन दोनों तत्वों का विस्तृत विवेचन मिलता है। यूनानी आचार्यों के बाद रोम और उनके बाद फ्रांस, इंग्लैंड आदि के अनेक काव्य-शास्त्रियों ने शैली के वस्तु-तत्त्व का सम्यक् विवेचन किया है।[5] शैली के वैयक्तिक तत्त्व के विषय में यह बात तो स्पष्ट है कि शैली में व्यक्ति-तत्त्व ही प्रधान होता है, उसी के द्वारा शैलीकार अनेकता में एकता की स्थापना करता है। वैयक्तिक तत्त्व के दो रूप हैं- एक तो शैली द्वारा कवि की आत्माभिव्यंजना और दूसरा पात्र तथा परिस्थिति के साथ शैली का सामंजस्य। यद्यपि भारतीय रीति-विवेचन में पहला रूप विरल है तथापि उसकी स्वीकृति का सर्वथा अभाव नहीं है। शैली और रीति पर्याय शब्द हैं अथवा उनमें कोई अन्तर है? इस विषय में विभिन्न आचार्यों ने अपने मत दिये हैं।

डॉ. सुशील कुमार 'डे' ने रीति व शैली एक मानने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए कहा कि रीति में व्यक्तित्त्व का अभाव है, जबकि शैली का मूल आधार ही व्यक्ति-तत्त्व है।[6] अत: दोनों को एक माना जाना भ्रान्ति है। हिन्दी के आचार्यों ने भी रीति और शैली के अन्तर को स्वीकार किया है पर साथ ही यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि जहां तक शैली के वस्तु-तत्त्व का सम्बन्ध है, उसको रीति से पृथक् मानना आवश्यक है। 'डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार यूरोप के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट शैली के तत्त्व नामान्तर से रीति के तत्त्वों में ही अन्तर्भूत हो जाते हैं।'

भारतीय काव्य-शास्त्रियों में आचार्य दण्डी ने काव्य-मार्ग को प्रति-कवि स्थित मानते हुए कहा है कि जितने कवि हैं, उतने ही मार्ग हो सकते हैं।[7] कुन्तक ने तो कवि-स्वभाव को ही शैली या (मार्ग) का मूलाधार माना है।[8] उनके उपरान्त शारदातनय ने भी 'पुंसि पुंसि विशेषेण कापि कापि सरस्वती[9]' कहकर व्यक्ति-तत्त्व को स्वीकृति दी है। वैयक्तिक तत्त्व के दूसरे रूप का विधान तो भारतीय काव्य-शास्त्र में निश्चय ही मिलता है। यद्यपि वामन ने इसका स्पष्टीकरण नहीं किया किन्तु वामन से पूर्व भरत ने स्पष्ट निर्णय दिया है कि नाटक में भाषा पात्र के शील-स्वभाव के अनुरूप होनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह प्रश्न होता है कि क्या रीति के तत्त्वों का उपर्युक्त शैली-तत्त्वों में अन्तर्भाव हो सकता है। लय, स्वर-लालित्य आदि कला-तत्त्वों को वर्ण-गुम्फ और शब्द-गुम्फ के अन्दर समाहित किया जा सकता है। बौद्धिक-तत्वों का समावेश अर्थव्यक्ति, प्रसादादि गुणों और कतिपय अर्थालंकारों के

5. काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः, पृ.55
6. History of Sanskrit Potics, Sushil Kumar De page No. 92.
7. काव्यादर्शः, पृ.35
8. हिन्दी वक्रोक्तिजीवितम्, पृ.98.
9. भावप्रकाशनम्, पृ.17.

www.thearyasamaj.org

अन्तर्गत हो जाता है और रागात्मक तत्त्व रस माधुर्य और ओजो गुणों में अन्तर्भूत हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तु-तत्त्व शैली और रीति दोनों के सर्वथा समान हैं- केवल नाम भेद है।[10] रीति पर व्यक्तित्व का प्रभाव दण्डी आदि प्राचीन आचार्यों तथा कुन्तक, शारदातनय आदि नवीन आचार्यों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।[11] कुन्तक का विवेचन तो सर्वथा आधुनिक ही प्रतीत होता है। वे यूरोप के आलोचकों की भांति ही स्वभाव पर बल देते हैं।[12] प्राचीन युग से लेकर आज तक अनेक पाश्चात्य विचारकों ने समय-समय पर शैली में व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को महत्व दिया है। उन्नीसवी शताब्दी में तो मनोविज्ञानवादियों और अभिव्यंजनावादी क्रांचे आदि ने शैली और व्यक्तित्व को अभिन्न बना दिया है। उनके अतिरिक्त और भी अनेक पाश्चात्य विद्वानों के मत प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनमें शैली का लेखक के व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है।

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकल सकते हैं-

1. अपने वर्तमान रूप में शैली में व्यक्तित्व का जितना महत्व है, उतना भारतीय रीति में कभी नहीं रहा। विधान रूप में उसमें वस्तु-तत्व का ही प्राधान्य रहा है। वामन की दृष्टि तो वस्तुपरक है ही, आनन्दवर्धन जैसे सर्वमान्य आलोचकों ने भी, जिन्होंने व्यक्ति की सत्ता को उचित स्वीकृति दी है, रीति के स्वरूप में व्यक्ति-तत्त्व का प्रभाव अत्यन्त संयत मात्रा में ही माना है।

2. इस प्रकार रीति और शैली के वर्तमान रूप में व्यक्तित्व की मात्रा का अन्तर अवश्य हो गया है। कम से कम शैली ही व्यक्ति है इस दृष्टि से भारतीय रीति व्यक्ति में एकाकार नहीं हो पाई। इस सम्बन्ध में कुन्तक जैसे आचार्य की एक-आध उक्ति को अपवाद ही मानना चाहिए।

– प्राध्यापिका, बी. टी. सी. डी. ए. वी. महाविद्यालय, बनीखेत (हिमाचल प्रदेश)।

---

10. आचार्य वामन और रीति सिद्धान्त, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 54
11. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ. 56
12. वक्रोक्तिजीवितम्, पृ. 98

www.thearyasamaj.org

छोटी सी चिड़िया का घर

– डॉ. शशांक मिश्र "भारती"

मेरे आंगन नीम के ऊपर
छोटी सी चिड़िया का सुन्दर घर,
तिनका-तिनका से है सजाया,
सजा-संवारकर है बनाया।

उसने उसमें अण्डे दे डाले
प्रेम पूर्वक उनको पाले,
नहीं उसे है जाड़े का डर
छोटी सी चिड़िया का सुन्दर घर।

हरदम खुश रहती है चिड़िया
मन में फूटती हैं फुल झड़ियां,
प्यारे कितने होंगे बच्चे
चूँ-चूँ करेंगे सीधे सच्चे।
धीरे-धीरे उग आयेंगे पर
छोटी सी चिड़िया का सुन्दर घर।

वह उड़ना उन्हें सिखायेगी
दूर-दूर घुमाकर लायेगी,
स्वच्छन्द गगन में उड़-उड़ कर
मेरे आँगन में आ गायेगी।
हम रह जायेंगे मुस्कराकर
छोटी सी चिड़िया का सुन्दर घर।

खुले आकाश में पालेगी
छाना चुगना सिखायेगी
मेरे आँगन नीम के ऊपर
छोटी सी चिड़िया का सुन्दर घर।

– सम्पादक "देवसुधा", दुबौला-पिथौरागढ़-262529

www.thearyasamaj.org

वेद में यज्ञ का स्वरूपात्मक अध्ययन

–डॉ. मीरा कुमारी

वेद समस्त मानवजाति का, ज्ञान–विज्ञान का मूल धरोहर है। वेदों में विविध यज्ञों का वर्णन हुआ है। वेदों से ही यज्ञ का उद्भव हुआ है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता वेद पर ही आश्रित है। वेदमंत्रों के अर्थ प्राचीन समय से अर्थात् वेद के मूल आशय को समझने की धारणा के साथ–2 वेदमंत्रों से ही तीन प्रक्रियाओं द्वारा लगाए जाते हैं– आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आधि–भौतिक।

ऋग्वेद में कहा गया है कि वेदमन्त्र त्रिविध प्रक्रिया को अपने अन्तराल में लिए हुए हैं **'वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्।'**[1] इसमें पुष्प और फल का वर्णन है। इस पुष्प और फल का अर्थ अधियज्ञ अधिदेव और अध्यात्म है। इन त्रिविध प्रक्रियाओं में यज्ञ का भी प्रकरण है। यज्ञ का वेद के साथ उसी प्रकार का सम्बन्ध है, जिस प्रकार देवता और अध्यात्म का है। वेदमन्त्रों में तीनों विषय तब से ही हैं जब से कि वेदमन्त्र हैं। ऋग्वेद के मन्त्र **'वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्'** का अर्थ करते हुए आचार्य यास्क ने भी कहा है कि अर्थं वाचः पुष्पफलमाह याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मे वा (निरुक्त 1.20) अर्थात् अर्थ को ही वाणी का पुष्प और फल कहा गया है और वह है यज्ञ, देवता एवं अध्यात्म। आचार्य यास्क के इसी स्थल का भाष्य करते हुए निरुक्त भाष्यकार स्कन्द स्वामी भी लिखते हैं **सर्वदर्शनेषु च सर्वे मन्त्रा योजनीयाः। कुतः स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वमन्त्राणां त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रदर्शनाय अर्थं वाचः पुष्पफलमाह इति यज्ञादीनां पुष्प–फलत्वेन प्रतिज्ञानात्** अर्थात् तीन प्रक्रियाओं की दृष्टि से सारे वेदमन्त्रों का अर्थ किया जाना चाहिए। क्योंकि स्वयं ही भाष्यकार (आचार्य यास्क) ने सभी मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ दिखलाने के लिए अर्थ को वाणी का पुष्प और फल कहा है तथा यज्ञदेव और अध्यात्म का पुष्प और फल से ग्रहण किया है।

इस प्रकार तीनों प्रक्रियाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ होते हैं परन्तु मध्यकाल में कुछ पण्डिताभिमानी वेदानभिज्ञ से इन प्रक्रियाओं का निर्वाह नहीं हुआ। इस दोष का सारा उत्तरदायित्व महीधर और सायण का है। इन्होंने वेदमन्त्रों के अनर्गल अर्थ किए। बहुधा मन्त्रों का अर्थ यज्ञ–प्रक्रिया में ही किया। वेद की नित्यता एवं उसके ईश्वरीय ज्ञान होने तथा स्वतःप्रामाण्यवाद की चर्चा तो प्रायः सभी भाष्यकार करते हैं। परन्तु जब तक हम वैदिकधर्म के पुनरुद्धारक, पाखण्डविदारक, कुरीतिनिवारक, अज्ञानसंहारक, वेदज्ञान के प्रतिष्ठापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाष्य का

1. ऋ. 10.71.5.

www.thearyasamaj.org

अध्ययन नहीं करते तब तक भ्रमित ही रहते हैं। क्योंकि उपलब्ध भाष्यों में महर्षि दयानन्द के भाष्य में ही वेद की सार्वभौमिक और सार्वकालिक प्रासंगिकता सिद्ध होती है।

वेद की इस प्रक्रिया का पल्लवन करते हुए ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि ग्रन्थों में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन किया गया है। मध्यकाल में श्रौतसूत्रों में भी कुछ मिलावट का प्रयत्न किया गया और इससे यज्ञ के स्वरूप में कुछ विकार भी आया।

वैदिक साहित्य में आये यज्ञ शब्द का अर्थ पाश्चात्य विद्वान् अंग्रेजी में "Sacrifice" करते हैं। ऋग्वेद के 1.16.4 में 'यज्ञदेवेभ्यः' पद का अनुवाद मैक्समूलर ने इस प्रकार किया "The Sacrificial horse which goes to the Gods"। वहीं हर मन्त्र में 'यज्ञेन' पद आया। उसका अर्थ भी Sacrifice ही किया है। इसी सूक्त के छठे मन्त्र में आये 'यूप' का अर्थ Sacrificial Post करता है। सत्रहवें मन्त्र में आये 'अध्वरेषु' का अर्थ भी The Sacrifice ही करता है। ऋग्वेद 1.1.4 में आए 'यज्ञमध्वरम्' पद का अर्थ 'हर्मन् ऑल्डनवर्ग' "Sacrifice and Worship" किया है। ग्रिफिथ ने भी अपने वेदानुवाद में "Agni the perfect Sacrifice" ही अर्थ किया है। मैकडानल ने अपने वैदिक रीडर पृष्ठ 6 पर इसी का अर्थ "Worship and Sacrifice" किया है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर यज्ञ एवं उसके पर्यायवाची 'अध्वरः' मख आदि पदों का अर्थ भी विण्टरनिट्ज, मैकडानल, एम. ब्लूमफील्ड आदि ने 'Sacrifice' ही किया है। जो भाव यज्ञ, अध्वर व मख का वैदिक साहित्य में है वह 'Sacrifice' का कदापि स्पष्ट नहीं होता। संस्कृत की 'यज्' धातु से निष्पन्न 'यज्ञ' शब्द का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण व दान बहुत व्यापक है। जबकि 'Sacrifice' में इसकी गन्ध भी नहीं आती। वैदिक साहित्य में प्रत्येक उत्तम श्रेष्ठ कर्म का नाम यज्ञ है। शतपथ ब्राह्मण में 1.7.1.5. में लिखा है– **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** यही वास्तव में यज्ञ का रहस्य है। यजुर्वेद का 18वां अध्याय ही **'यज्ञेन कल्पन्ताम्'** से भरा है। यदि वहाँ भी 'यज्ञ' का अर्थ 'Sacrifice' ही किया जाए तो एक भी मन्त्र की संगति नहीं लगेगी। जबकि वेद में 'यज्ञ' शब्द से सभी श्रेष्ठतम कर्म विज्ञान आदि अभिप्रेत हैं।

वेदों में यज्ञ पद से विविधता का ग्रहण होता है। जब हम यजुर्वेद[2] को प्रथम अध्याय से पढ़ना प्रारम्भ करते हैं तब ज्ञात होता है कि यहाँ के मध्य कोई क्रम यज्ञ का दिखायी देता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेदभाष्य में प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में ही 'कर्मणे' पद का अर्थ किया है, करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञ कर्मों के लिए। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि यज्ञ शब्द को किसी क्रियाविशेष तक सीमित न किया जाए। जो भी करणीय सर्वोपकार की भावना के कर्म हैं वे यज्ञ कहे जाते हैं। इसी मन्त्र में आए **'यजमानस्य'** पद का अर्थ ऋषिवर करते हैं– ''परमेश्वर और

---

2. यजु. 1.12.

www.thearyasamaj.org

सर्वोपकार धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के'' अभिप्राय यह हुआ कि सृष्टियज्ञ का यजमान यदि परमात्मा है तो सर्वोपकारक धर्मयज्ञ का यजमान मनुष्य होता है। यजुर्वेद के प्रारम्भ में ही **'यज्ञपति'** शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ लिए हुए है जो शुद्धि का हेतु है जो विद्वान् के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला है, जो वायु को शुद्ध करने वाला है, जो संसार को धारण करने वाला है तथा जो उत्तम स्थान से सुख बढ़ाने वाला है। उस यज्ञ का त्याग मत करो और यज्ञ की रक्षा करने वाला यजमान भी उसको न त्यागे। यज्ञ शब्द की धातु की दृष्टि से इसका अर्थ तीन प्रकार से किया जा सकता है एक जो इस लोक और परलोक के सुख के लिए विद्या ज्ञान और धर्म के सेवन से वृद्ध अर्थात् बड़े-बड़े विद्वान् हैं उनका सत्कार करना। दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुणों के मेल और विरोध के ज्ञान से शिल्पविद्या का प्रत्यक्ष करना और तीसरा नित्य विद्वानों का समागम अथवा शुभगुण विद्या, सुख, धर्म और सत्य का नित्य दान करना है। 'देवपूजा, संगतिकरण एवं दान का इतना वैज्ञानिक व व्यावहारिक अर्थ एवं यज्ञ को केवल कर्मकाण्ड के सीमित दायरे से बाहर निकालकर व्यापक अर्थ देने का कार्य ऋषि दयानन्द के भाष्य की देन है।'

यजुर्वेद में 'सविता'[3] शब्द से वसु आदि तैंतीस देवों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर का ग्रहण किया है एवं यज्ञ 'सविता' से कामना की गयी है। जिस यज्ञ के लिए **'स्वर्गकामो यजेत्'** कह कर स्वर्ग की कामना हेतु यज्ञ करने का आदेश दिया गया है वह न तो यज्ञ सीमित है और न स्वर्ग ही।

वेद में सत्यव्रत के आचरण के अनुष्ठान को यज्ञ कहा गया है। यहाँ 'अग्ने[4]' सम्बोधन से सत्य उपदेश करने वाला परमेश्वर ग्रहण किया गया है। सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना इस प्रक्रिया को अनुष्ठान माना गया है। सत्याचरण की आज्ञा स्वयं परमेश्वर ने दी है, जिसे यजुर्वेद के मन्त्रों में यज्ञ माना गया है। एवं सत्याचरण कर्त्ता को 'यजमान' की संज्ञा दी है ''ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा और आशीर्वाद देता है कि किसी मनुष्य को यज्ञ, सत्याचार और विद्या के ग्रहण से चलायमान कभी नहीं होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य का उक्त यज्ञ आदि अच्छे-अच्छे कार्यों से ही उत्तम-उत्तम सन्तान कायिक वाचिक और मानस त्रिविध प्रकार के सुख प्राप्त हो सकते हैं।'' वेद एवं वैदिक साहित्य में सत्य (यज्ञ) के वाचक के रूप में 'ऋत' पद का प्रयोग किया है। 'ऋत' यज्ञ का नाम इसलिए ज्ञात होता है कि वह नियमों, व्रतों, अनुशासन, सत्य नीति के सिद्धान्तों और सृष्टिनियमों पर आधारित है। 'ऋत' पद के भाव को बताने के लिए ब्राह्मणग्रन्थों में निम्न वाक्य उपलब्ध होते हैं[5]-

1. सत्यं वा ऋतम्। 2. ऋतमिति सत्यमित्येतत्। 3. ऋतमित्येष (सूर्यः) वै सत्यम्।

---

3. यजु. 1.13.
4. यजु. 1.15.
5. शतपथब्राह्मण, 7.3.123; 6.7.3; 11.4.1.4; 10.

www.thearyasamaj.org

4. अग्निर्वा ऋतम्। 5. मनो वा ऋतम्। 6. ब्रह्म वा ऋतम्। 7. ओमित्येतदेवाक्षरमृतम्।

उपर्युक्त वाक्यों में सत्य सूर्य, अग्नि, मन, ब्रह्म और ओम अक्षर को ऋत कहा गया है। यहाँ ऋत के जितने अर्थ बताये गये हैं सभी का 'यज्ञ' से सम्बन्ध पाया जाता है। 'यज्ञ' की प्रतिष्ठा सत्य पर है। सत्यज्ञान, सत्यवचन, सत्यकर्म, सत्यश्रद्ध, सत्यनियम और सत्यनिश्चय के बिना कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता। यह सत्य ही मूल है, जिससे (यज्ञ) को पल्लवित किया जाता है।

'यज्ञ' का जो भौतिक रूप है उसके विषय में यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में आया है कि परमेश्वर द्वारा उत्पन्न किए संसार में निर्दोष और पवित्रता सूर्य किरणों से होती है एवं 'यज्ञ' सम्बन्धी प्राण और अपान की गति पदार्थों को भी पवित्र करने में करण है। अग्नि में जो गुण हैं वे अग्नि के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होकर मेघमण्डल तक विस्तीर्ण होते हैं और इससे वायु-शुद्धि होती है। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण शुद्धि अत्यन्त व्यापक है। परमात्मा ने अग्नि और सूर्य को इसलिए रचा है कि वे सब पदार्थों में प्रवेश करके उनसे रस और जल को छिन्न-भिन्न कर दें। जिससे वे वायुमंडल में जाकर वहाँ से पृथिवी पर आकर सभी को सुख और शुद्धि प्रदान करने वाले हों। इससे मनुष्यों को उत्तम सुख प्राप्त करने के लिए अग्नि में सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा सुख बढ़ाने के लिए प्रीतिपूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिए। पर्यावरण अशुद्ध रहने पर मनुष्य कभी सुखी नहीं रह सकता और उस भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण की शुद्धि का साधन यज्ञ माना गया है।

मनुष्य को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिए जिससे पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्न आदि पदार्थ, रोगनाश और सब सुखों का विस्तार हो, उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि उसके बिना वायु और वृष्टि जल तथा ओषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को भली प्रकार सुख उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिए ईश्वर ने उक्त यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है। प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि अल्पमात्रा में घी व सामग्री से प्रतिदिन किए जाने वाले यज्ञ के द्वारा वायुप्रदूषण के महान् ओघ को कैसे दूर किया जा सकता है? उद्योगों का जितना धुआं वायु को दूषित करता है उसमें यह छोटी-सी मात्रा का यज्ञधूम समुद्र में बिन्दू के समान अर्थात् ना के बराबर होगा। उसका समाधान यह है कि संसार में जितनी आबादी है उसमें प्रत्येक गृहस्थी को प्रतिदिन यज्ञ करना चाहिए तथा सामूहिक यज्ञों का आयोजन बड़े स्तर पर होने से वायुप्रदूषण निष्प्रभावी किया जा सकता है। यज्ञों के प्रसंग में यजुर्वेद के 36वें अध्याय के एक मन्त्र का पाठ भी किया जाता है, जिसमें कहा है कि हमारे लिए कल्याणकारी वायु बहे, सूर्य हमारे लिए सुखद रूप में तपे, दिव्य शक्ति वाला मेघ गरजता हुआ बरसे और हमारे लिए कल्याणकारी हो। यहां पर मन्त्र में वायु के बहने और सूर्य के तपने की बात कही गयी है। इन दोनों का एक-दूसरे से पूरा सम्बन्ध है। बिना

www.thearyasamaj.org

इनके सहयोग से मेघ का बनना व सृष्टि का बनना व सृष्टि का होना सम्भव नहीं हो सकता। परन्तु इस मन्त्र में एक गम्भीर बात कही गयी है कि मेघ गरजता हुआ बरसे। वर्षा हो परन्तु गरजते हुए मेघ से वर्षा हो। यदि मेघ का गरजना और विद्युत की चमकाहट आदि न हो तो रोग के कृमियों का विनाश न होगा। भूमि और खाद आदि में उपजाऊ शक्ति भी नहीं आती। इसलिए यज्ञ से बनने वाले मेघ प्रदूषण को भी दूर करें एवं कृषि में भी सहायता करें, ऐसी प्रार्थना है।

यजुर्वेद[6] के 18वें अध्याय के 1 से 27 तक के मन्त्रों में की गयी प्रार्थना से यज्ञ की व्यापकता स्पष्ट होती है। इन 27 मन्त्रों में प्रत्येक के अन्त में **''यज्ञेन कल्पन्ताम्''** अर्थात् यज्ञ से सिद्ध हो, ऐसा उल्लिखित है। प्रथम मन्त्र से धन, ऐश्वर्य, प्रयत्न, प्रबन्धक्रिया, धारणशक्ति, क्रतु, श्रेष्ठ बुद्धि व कर्मस्वातन्त्र्य काव्यमयी वाणी, यश विद्याओं को श्रवण करने की प्रवृत्ति, ज्ञान तथा सुख मुझे यज्ञ से सिद्ध हों। यहाँ यज्ञ पद का अर्थ विविध व्यवहारों और विज्ञानों में निपुणता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यज्ञ में यजमान द्वारा प्रदत्त आहुतियाँ सूर्य की किरणों के साथ जाकर उसे मानों स्वर्गलोक में बुलाती हैं। यह स्वर्गलोक क्या है ? जहाँ तक रसायनविज्ञान के प्रभाव और भौतिकी का सम्बन्ध है **'स्वः'** शब्द सूर्य के लिए प्रयुक्त होता है **'स्वः'** सूर्य है और उसका स्थान आकाश स्वर्ग या 'स्वर्गलोक' है। सूर्य की किरणों के साथ आहुतियों का सार यजमान के साथ सौर-प्राणों का सम्बन्ध स्थापित कर देता है। परन्तु स्वर्गसुख प्राप्ति की अवस्था भी इस यज्ञ से प्राप्त होती है। ज्ञान की किरणें यजमान के लिए यज्ञकर्म के साथ उस सुख को भी प्राप्त कराती हैं, चाहे वह इस जन्म में प्राप्त हों या इस जन्म के बाद।

जब यजमान व्रत करता हुआ कहता है कि मैं **'अनृतात् सत्यमुपैमि'** अर्थात् मनुष्यत्व से देवत्व को प्राप्त होकर यज्ञ का सम्पादन करता हूँ तब वह देव होकर ही यज्ञ करता है। देवत्व को प्राप्त ही इस यज्ञ का अधिकारी बनता है। इस तरह यज्ञ व्यापक ध्येय का सम्पादक बन जाता है। अतएव यज्ञ में वेद का महत्वपूर्ण स्थान है और इसका विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। आज भी वेद का अनुकरण करके ही हमारे समाज में यज्ञकर्म सम्पादित किया जाता है और वेदपाठ से वातावरण गुंजायमान हो जाता है। यज्ञकर्म के द्वारा मनुष्य परमानन्द को प्राप्त करता है।

द्वारा – शोभाकान्त मिश्रा, रोज़बड पब्लिक स्कूल,
गौतम नगर, सहरसा-143001 (बिहार)

---

6. यजु. 18.1-27.

www.thearyasamaj.org

हर हाल में बचें रोडरेज से

–श्री सीताराम गुप्ता

पिछले दिनों की बात है। एक विवाह में शामिल होने के बाद रात को घर लौट रहे थे। सड़कों पर भीड़-भाड़ भी नहीं थी। रास्ते में एक जगह पुलिस वाहनों की जाँच कर रही थी विशेषरूप से कमर्शियल वाहनों की। अचानक पुलिस के एक कान्स्टेबल ने हमारी गाड़ी से आगे चल रही गाड़ी को रुकने का इशारा किया। अगली गाड़ी के ड्राइवर ने गाड़ी को धीमा किये बग़ैर ही ज़ोर से ब्रेक मारकर गाड़ी वहीं की वहीं रोक दी। हमारी गाड़ी अगली गाड़ी से टकरा गई। गाड़ी मेरा बेटा चला रहा था। इसे एक दुर्घटना ही समझिए और इस दुर्घटना से दोनों ही गाड़ियों में थोड़ा-बहुत नुकसान भी हुआ। अगली गाड़ी में बैठे लोग उतरकर बाहर आए और हालात का जायज़ा लेने लगे।

सही अर्थों में वो लोग हालात की बजाए हमारा जायज़ा ले रहे थे कि हम कितने कमज़ोर या ताकतवर हैं। हम सब भी गाड़ी से बाहर निकल आए। इससे पहले कि वे लोग कुछ कहते मैंने ही हाथ जोड़कर कहा, ''भाई साहब ग़लती हमारी है।'' और फिर पूछा कि किसी को कुछ चोट-वोट तो नहीं लगी? ''चोट-वोट तो नहीं लगी, लेकिन गाड़ी का तो कबाड़ा हो गया'', एक सज्जन ने ज़रा बनावटी गुस्सा प्रकट करते हुए कहा। ''भाई साहब हमने कोई जान-पूछकर तो टकराई नहीं। आपने एकदम ज़ोर से ब्रेक मार दी और हम संभल नहीं पाए। फिर भी हम अपनी ग़लती मान रहे हैं'', मैंने विनम्रतापूर्वक कहा। ''ग़लती मान रहे हो तो इसका जो डैमेज हुआ है दे दो,'' उन सज्जन ने बेरुखी से कहा।

जो व्यक्ति गाड़ी ड्राइव कर रहा था उसने गाड़ी का निरीक्षण करके कहा कि कम से कम दो हज़ार रुपये लगेंगे इसके डेंट ठीक करवाने में। हमारी गाड़ी ज्यादा डैमेज हुई थी लेकिन उसमें उनका कोई दोष नहीं था। दूसरी गाड़ी एक बारह-पंद्रह साल पुरानी मारुती वैन थी जिसमें मुश्किल से दो सौ रुपये का डैमेज हुआ होगा। ''वैसे गाड़ी तो हमारी भी डैमज हुई है भाई साहब'', मैंने पुनः अत्यंत विनम्रतापूर्वक कहा। ''तो फिर ठीक है पुलिस को बुला लेते हैं'', भाई साहब ने कहा। भाई साहब कई बार पुलिस को बुलाने की धमकी दे चुके थे।

जिन की ग़फ़लत से ये दुर्घटना हुई थी उन्हें इससे कोई मतलब नहीं था। वे अपनी कमर्शियल वाहनों की जाँच में मस्रूफ थे। इस दौरान मेरे छोटे भाई ने अपनी जेब से कुछ पैसे निकाले और उनके हवाले कर दिये। उन्होंने कहा कि इतने से क्या होगा? मेरे छोटे भाई ने कहा कि हम न तो आपको किसी तरह का हर्ज़ाना दे सकते हैं और न ही आपको जो कष्ट हुआ है उसकी क्षतिपूर्ति ही कर सकते हैं। बस असावधानीवश जो ग़लती हो गई है उसके लिए क्षमा कर दीजिए। ख़ैर मामला किसी तरह सुलझ गया और हम सब सकुशलता से घर लौट आए।

दुर्घटना स्वाभाविक है लेकिन कभी-कभी इसके अत्यंत भयंकर परिणाम होते हैं। कई बार दुर्घटना में आर्थिक नुकसान तो नाम मात्र का होता है लेकिन दुर्घटना के उपरांत सड़क पर उत्पन्न गुस्से अथवा रोडरेज के कारण स्थिति गंभीर और घातक हो जाती है। गाली-गलौज और मार-पिटाई तो सामान्य सी बात है। अतः रोडरेज से बचाव बेहद ज़रूरी है। रोडरेज से बचने के लिए जरूरी है –

- अत्यंत सावधानीपूर्वक गाड़ी चलाएँ।
- ट्रेफिक के नियमों का पालन करें।
- यदि दूसरे की ग़लती है तो भी उसे सामान्य रूप में लें।
- दुर्घटना की स्थिति में धैर्य न खोएँ।
- गाड़ी से ज्यादा व्यक्ति की जान महत्त्वपूर्ण है। यदि किसी से आप की गाड़ी में नुकसान हो भी गया है

www.thearyasamaj.org

तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि आप उसकी जान ही ले लें। वैसे भी किसी की जान लेने का क्या परिणाम होता है आप जानते ही होंगे।

- दुर्घटना की स्थिति में सबसे पहले ये देखें कि किसी को चोट तो नहीं लगी है। यदि किसी को चोट लगी है तो सबसे पहले उसकी चिकित्सा की ओर ध्यान दें।
- जो लोग आपसे आगे निकलना चाहते हैं उनको आगे जाने का रास्ता दे दें चाहे वे ग़लत ही क्यों न हों। इससे आप ज़्यादा सुरक्षित हो जाएँगे और तनावरहित होकर गाड़ी चला सकेंगे।
- हमारे यहाँ ट्रैफिक की हालत को देखते हुए गाड़ियों में खरोंच या छोटा-मोटा डेंट पड़ जाना स्वाभाविक है, इन छोटी-मोटी बातों की परवाह न करें।
- कई बार ग़लती हमारी ही होती है जिसकी वजह से हमारी गाड़ी क्षतिग्रस्त हो जाती है लेकिन फिर भी हम दोषारोपण दूसरों पर ही करते हैं जो सरासर ग़लत है।
- कई बार कुछ लोग किसी की ग़लती से हुई छोटी-मोटी खरोंच या डेंट के लिए न केवल दूसरे व्यक्ति को बुरा-भला कहते हैं अपितु क्षतिपूर्ति के रूप में हज़ारों रूपये की माँग भी करते हैं जो किसी भी तरह से उचित नहीं।
- कुछ लोग दूसरों से तो हर्ज़ाना ले लेते हैं लेकिन आप कभी किसी को एक पैसा भी नहीं देंगे इसके लिए चाहे उन्हें कितना ही गिड़गिड़ाना पड़े या नाक रगड़नी पड़े।
- कई बार किसी दुर्घटना में कोई भी स्पष्ट रूप से दोषी नहीं होता, अतः एक दूसरे पर दोषारोपण करना बेमानी है।
- अपनी ग़लती है तो उसे स्वीकार करें। मामले को बातचीत द्वारा ही सुलझाने की कोशिश करें।
- ग़लती चाहे किसी की भी हो लेकिन किसी दुर्घटना के बाद यदि आप सही सलामत हैं तो क्या यह किसी क्षतिपूर्ति से कम है।

जिन लोगों में तनिक भी मानसिक धैर्य और आर्थिक बर्दाश्त का माद्दा नहीं है वे किसी भी तरह गाड़ी डिजर्व नहीं करते। ऐंठ नवाब की और औक़ात भिखारी की। हर चीज़ के साथ नफा-नुक्सान तो जुड़ा ही रहता है। गाड़ी चलाते हैं तो गाड़ी के अनुरूप औक़ात और स्टेटस भी ज़रूरी रखें।

एक पुरानी घटना याद आ रही है। मैं अपने एक मित्र के साथ पूना शहर से पूना एयरपोर्ट की तरफ जा रहा था। हम जिस ऑटो में बैठे थे वो जैसे ही एक कार की बराबर से गुज़रा कार का बंपर ऑटो में उलझकर अलग हो गया। कार ड्राइवर चला रहा था। ड्राइवर ने ऑटो रुकवा लिया और ऑटो वाले से नुकसान के पैसे माँगने लगा। नुकसान वास्तव में कुछ विशेष हुआ ही नहीं था। एक पुलिस वाले ने आकर कहा कि एक तरफ होकर अपना फैसला कर लो और कार व ऑटो दोनों को साइड में खड़ा करवा दिया।

हमें भी एयरपोर्ट पहुँचने की जल्दी थी। हम दूसरा ऑटो ले सकते थे लेकिन मैं ऑटो से उतरकर कार में बैठे कार के मालिक के पास गया और उससे कहा, ''सर हमें एयरपोर्ट पहुँचने की जल्दी है। आप ऑटो वाले को जाने दें तो बड़ी मेहरबानी होगी। वैसे आप बाहैसियत आदमी हैं ऑटो वाले से क्या सो-पचास रुपये लेंगे।'' उन सज्जन ने कहा, ''ठीक है आप लोग जाइये'' और अपने ड्राइवर को बुला लिया।

आप सब महानुभाव जो ये लेख पढ़ रहे हैं निश्चित रूप से सकारात्मक दृष्टिकोण से सम्पन्न हैं और अपने व्यक्तित्व के निरंतर विकास के लिए प्रयत्नशील भी। अतः आप न केवल रोडरेज की विभीषिका से स्वयं बचने का प्रयास करें अपितु अन्यत्र जहाँ भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई हो वहाँ भी ईमानदारी से मध्यस्थता करने का प्रयास करें ताकि कोई भयावह स्थिति उत्पन्न न हो। तटस्थ नहीं जिम्मेदार नागरिक ही प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी होता है।

—ए. डी. 106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110034

www.thearyasamaj.org

वेद और चिकित्सा-विज्ञान

-डॉ. (श्रीमती) विनय गुप्ता

वेद सभी सत्यविद्याओं का आधार है। वास्तव में हमारे वैदिक ऋषि केवल ज्ञान तथा विज्ञानवेत्ता थे। ज्ञान के विषय में तो कहना ही क्या है। समस्त विश्व उनका लोहा मानता है। पर वे ऐसे सूक्ष्म वैज्ञानिक सिद्धान्तों को भी जानते थे, जिनकी आधुनिक वैज्ञानिक अभी तक खोज नहीं कर पाए हैं।

अधिकांश लोगों की धारणा थी कि ज्ञान तो भारतीय ऋषियों की देन है इसमें तनिक सन्देह नहीं। परन्तु रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान,वनस्पति विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, युद्धशास्त्र विज्ञान आदि सभी बुद्धि प्रदायक विशिष्ट ज्ञान पश्चिमी देशों की देन है। किन्तु आज भारत के प्राचीन तथा अर्वाचीन वैज्ञानिकों ने इस धारणा को निर्मूल साबित कर दिया है। इसी दिशा में कुछ तथ्य लेख में देने का प्रयास किया जा रहा है। वेद में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में ओषधि, शल्य, यौगिक आदि चिकित्सा-पद्धतियों में ओषधियों, योग क्रियाओं आदि से सम्बन्धित चक्षुप्राप्ति सूक्त (10.15.8) गर्भरक्षण सूक्त (ऋ. 10/162) गर्भाशीर्वाद सूक्त (ऋ. 10/183) व सर्वाङ्गरोग-नाशक सूक्त (ऋ. 10/162) आदि सूक्त इस बात के प्रबल प्रमाण हैं कि शरीर-संरचना, विभिन्न रोगों और उन्हें दूर करने के लिए अनेक प्रकार की चिकित्सा- पद्धत्तियों का ज्ञान प्राचीन वैदिक मनीषियों को था। अर्थववेद के दसवें काण्ड में 33 मन्त्रों का एक लम्बा सूक्त, जिसमें सिर से लेकर पैर तक मुख्य-मुख्य सभी अंगों की गणना कर सांकेतिक भाषा में शरीर-संरचना विज्ञान का वर्णन इसी दिशा में प्रमाण है।[1]

वैदिक काल में भारत में दो महान् चिकित्सक हुए। उनके नाम थे- अश्विनी कुमार, "देवानां भिषजौ" वे देवताओं की चिकित्सा किया करते थे। न केवल ओषधि-विज्ञान में अपितु शल्य-चिकित्सा में भी वे कुशल तथा प्रतिभावान् थे। रोगदोष एवं रोग निवारण करने वाले अश्विनी कुमारों का गुणगान वेदों में कई स्थानों पर मिलता है।[2] ऋग्वेद में कहा गया है कि शरीररूपी रथ के सभी रोग पृथ्वी व सूर्य से दूर हो सकते हैं।[3] यह संदर्भ संकेत करता है कि आकाश आदि पञ्चमहाभूतों की अनेक शक्तियों का सूक्ष्म ज्ञान हमारे वैदिक ऋषियों को था। इसी कारण उन्होंने इन प्राकृतिक पञ्चमहाभूतों का आश्रय ग्रहण कर प्राकृतिक-चिकित्सा पद्धतियों का आविष्कार किया।

वनस्पति चिकित्सा –

ऋग्वेद में चिकित्सक को भिषक्[4] कहा गया है, तथा जल[5] और औषधियों[6] से कल्याण की कामना की गई है। अश्वावती, सोमावती,

1. कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। अथर्व., 10/2/6.
2. क. प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्देवानामग्रे भिषजा शचीभिः। अथर्व. 7/55/1,(ख) सज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नियच्छतम्॥ अथर्व. 7/54/1. (ग) ऋ. 10/17/2, (घ) ऋ. 1/3/1-2.
3. ऋ. 10/59/10.
4. ऋ. 2/33/4.
5. ऋ. 6/50/7.
6. ऋ. 8/20/26, 9/9/3.

www.thearyasamaj.org

ऊर्जयन्ती, उदोजस् नामक औषधियों का उल्लेख भी वहां मिलता है।[7] यजुर्वेद में भी औषधियों का वर्णन मिलता है।[8] वेदों में ऐसी ओषधियों का भी वर्णन आता है जो तलवार आदि से कटी हड्डियों को, मांसपेशियों को, त्वचा को जोड़कर व्रण से बहते रुधिर को बन्द कर देती है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कटी टांग की जगह लोहे की टांग लगाने का उल्लेख मिलता है।[9]

विभिन्न रोगों का निवारण करने के लिए वेदों में लाक्षा (लाख) प्लक्ष (पिलखन), अश्वत्थ (पीपल), खादिर (खैर), न्यग्रोध (बड़), पर्ण (ढाक) आदि वृक्षों से बनने वाली ओषधियों का वर्णन मिलता है। अथर्व. के 6/43 में एक 'दर्भ' नामक ओषधि का उल्लेख मिलता है जिसके सेवन से क्रोधशील व्यक्ति का क्रोध कम हो सकता है। वहां नेत्र रोगों को शान्त करने के लिए 'कुष्ठ' ओषधि का (अथर्व. 5/4), वात रोगों व अंगपीड़ा को शान्त करने के लिए 'पिप्पली' (अथर्व. 6/109), नामक ओषधि का और बालों से सम्बन्धित रोगों के लिए 'नितत्नी' (अथर्व. 6/136-137), नामक ओषधि आदि का वर्णन मिलता है। साथ ही अनेक रोगों के शमन के लिए मण्डूक पर्णी, मजीठ, श्योनाक नामक वृक्षों से मिलने वाली अनेक ओषधियों का वर्णन वेदों में पर्याप्त रूप से मिलता है।[10] इसी प्रकार Blood Chlorestol को Control करने अर्जुन नामक वृक्ष की छाल की क्वाथ का उल्लेख है। त्वचा रोग के लिए 'तुलसी' का वर्णन वेदों में कई स्थानों पर आता है।[11] हरड़[12], हल्दी[13] आदि के अनेक ओषधीय गुणों के साथ-साथ पुत्रदा[14] एवं पशुओं को हृष्ट-पुष्ट रखने वाली ओषधियों का वर्णन भी वेदों में मिलता है। अथर्ववेद में सर्पों के अनेक प्रकार के विष को मारने वाली ओषधि का वर्णन मिलता है।[15] यद्यपि आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान ने बहुत प्रगति कर ली है, परन्तु ऋग्वेद में वर्णित बुढ़ापे को दूर करने वाली (ऋक् 1/116/10) या दीर्घायु प्रदान करने वाली अनेक ओषधियां आधुनिक चिकित्सकों के लिए अभी रहस्य ही बनी हुई हैं।

जल चिकित्सा –

वेदों में जल का एक गुणकारी ओषधि के रूप में वर्णन है। वहां जल अर्थात् 'आपः' को अमृत कहा है कि जैसे अमृत शारीरिक व मानसिक रोगों को दूर कर नीरोगता व दीर्घायु प्रदान करता है, उसी प्रकार शुद्ध जलों के सम्यक् सेवन से भी सब लाभ प्राप्त होते हैं। वहां अनेक स्थानों पर जल को 'उर्ज' अर्थात् बल तथा नेत्रों को सुन्दर ज्योति प्रदान करने वाला कहा है।[16] साथ ही अग्नि के संयोग को रोगशामक ओषधि[17] बताकर शीतल जल व गर्म जल से किये जाने

---

7. ऋ. 10/17/2.
8. यजु. 1/70.
9. ऋ. 1/116/15.
10. यो अन्येद्युरुभयेद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्वव्रतः। अथर्व., 7/116/2.
11. अथर्व., 1/74.
12. अथर्व., 5/22/4.
13. अथर्व., 5/22/4.
14. अथर्व., 19/31, 6/11/3.
15. अथर्व., 5/13/6-10.
16. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। (अथर्व., 1.5.1)
17. अथर्व., 1/6/24.

www.thearyasamaj.org

वाले उपचारों की ओर संकेत किया गया है। अथर्ववेद में जल को चिकित्सकों का चिकित्सक कहकर इसके अनेक ओषधीय गुणों का वर्णन किया गया है।[18]

अग्नि चिकित्सा –

वेदों में अग्नि को 'गृहपति' कहा गया है। वैदिक काल में होम अर्थात् यज्ञ प्रज्ज्वलित कर उसमें पवित्र समिधाएं डाली जाती थीं, जिनका धूम वातावरण शोधन का एक अद्‌भुत कार्य करता था। यज्ञ-धूम द्वारा अनेक प्रकार के रोगों व रोगजन्तुओं का नाश करने का वर्णन अथर्ववेद के 5वें सूक्त में मिलता है।[19] जब अमृततुल्य घृत में मिलाकर सर्वश्रेष्ठ वनस्पतियां तथा द्रव्य-पदार्थ अग्नि में प्रज्वलित किये जाते हैं तो उनसे निकलने वाला धुआं विभिन्न रोगों में आश्चर्यजनक लाभ देता है और शरीर में अनायास प्रविष्ट होकर वात, पित्त, कफ आदि रोगों को दूर कर जीवनदायी तत्त्वों को प्रोत्साहित करता है।[20]

अथर्ववेद में कर्पूर, अजवायन एवं गुग्गल आदि के धूम को भी अनेक रोगों का नाशक बताया गया है।[21] आज भी यदि प्राचीन काल के समान यज्ञादि घरों में किए जायें तो उससे वातावरण तो शुद्ध होगा ही है साथ-साथ रोगजन्तु भी नष्ट होते हैं। उससे उत्पन्न राख भी खेती के लिए उपयोगी कही गई है, क्योंकि यज्ञ की राख भूमि को उपजाऊ व दोषरहित अर्थात् दीमक आदि अनेक कीड़ों से उसकी रक्षा करती है और धन-धान्य की वृद्धि करती है।

वायु चिकित्सा –

वायु को वेदों में स्वास्थ्य का दाता तथा रोगों का शमनकर्त्ता कहा है। कहा गया है कि प्राण तथा अपान के समन्वय से ही जीवन रहता है।[22] वेदों में शुद्ध वायु के सेवन के लाभों का वर्णन किया गया है।[23] अथर्ववेद में कहा है कि जब हम श्वास द्वारा शुद्ध वायु अन्दर लेते है तो वह 'दक्ष' अर्थात् शक्ति प्रदान करता है और जब हम प्रश्वास द्वारा दूषित वायु बाहर निकालते हैं तो वह अपने साथ 'रपः' अर्थात् रोगों को बाहर ले जाती है।[24]

अथर्ववेद में ''वियुग्भिः विमुञ्च'' द्वारा प्राण की विशेष योजना को मुक्ति का साधन भी कहा है।[25] एवम् वेदों में शुद्ध वायुसेवन को ओषधि बताकर वैदिक मनीषियों ने प्राणायाम-विधि के एक बहुमूल्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जो भारत के ऋषियों की अनुपम देन है जो निश्चित रूप से एक पूर्ण चिकित्सा-पद्धति है।

सूर्य चिकित्सा –

वैदिक ऋषियों ने सूर्य को केवल आग या अनेक गैसों का गोला ही नहीं अपितु असीम सत्ता का सांकेतिक प्रतिबिम्ब माना है। वहां सूर्य को नमस्करणीय देवता कहा गया है। अथर्ववेद में सूर्य की सात रंग वाली किरणों को अनेक रोगों का

18. अथर्व., 6/57, 6/100.
19. अथर्व., 5/23/13.
20. ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। यजु., 2/34.
21. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादु राजयक्ष्मात्। अथर्व, 3/11/1; 19/38/1.
22. अथर्व., 7/53/2-4.
23. ऋ. 10/137/1.
24. अथर्व., 4/13/3.
25. अथर्व. 11/6/5.

www.thearyasamaj.org

नाशक बताया गया है।[26] आधुनिक चिकित्सा-पद्धति भी सूर्य की किरणों से पीलिया आदि रोगों का प्रावधान करती है। प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति के कुशल चिकित्सक अनेक रोगों के शमन के लिए सूर्य की किरणों में तैयार हरे, नीले या लाल रंग के पानी और तैल आदि को ओषधि रूप में प्रयोग करने का परामर्श देते हैं।[27]

अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों द्वारा यह संकेत दिया गया है कि प्रातःकाल सूर्याभिमुख होने से शक्तिशाली पराबैंगनी किरणें अर्थात् Ultra Violet Rays निकलती हैं, जो शरीर में रोग-प्रतिरोधक-शक्ति को बढ़ाती हैं और शरीर में विटामिन बी, सी तथा डी की कमी से होने वाले रोग शान्त होते हैं।

वेदों में रक्तप्रवाह चक्र (Circulatory System of Blood) का भी वर्णन मिलता है। वहां रक्त के लिए 'आपः' शब्द का प्रयोग किया गया है। हृदय से रक्त प्रवाह शुद्ध होकर सम्पूर्ण शरीर में फैलता है और मलिन रक्त पुनः हृदय में आ जाता है, इसलिए वहां हृदय के लिए प्रयुक्त सिन्धु-शब्द बड़ा ही सार्थक प्रतीत होता है। यह कहना कि 17वीं शताब्दी में इंगलैंड के डॉ. Harvey ने रक्तप्रवाह-चक्र की खोज की थी। यह एक विचारणीय विषय है।

शल्य चिकित्सा –

वैदिक ऋषि शल्य-चिकित्सा के भी महान् ज्ञाता थे। आज प्लासटिक शल्य-चिकित्सा को आधुनिक युग की देन माना जाता है परन्तु ईसा से भी बहुत पहले भारतीय शल्य चिकित्सक सुश्रुत ने अपार ख्याति प्राप्त कर ली थी। उन्होंने शल्य-क्रिया के उपकरणों की सहायता से मस्तिष्क की शल्य-क्रिया सफलतापूर्वक की थी। सुश्रुत-संहिता में चिकित्सालय निर्माण के अनेक नियमों का वर्णन मिलता है, जिन पर हमारे देश से ज्यादा पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक शोध कर रहे हैं तथा उन्हें एक के बाद एक सत्य सिद्ध कर रहे हैं।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि वैदिक परम्पराओं में चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी यथेष्ट संकेत हैं। इसके समर्थन में 5 अगस्त, 1982 को दिल्ली में 'संस्कृत दिवस समारोह' के अवसर पर डॉ. राजरमन्ना (पूर्व अध्यक्ष भाभा परमाणु केन्द्र) ने अपने भाषण में जो कहा था उसको तनिक दिया जा रहा है। उन्होंने कहा कि– *"In searching medicine in Vedas the expert of Sanskrit language is as important as the expert of medicine. While the Sanskrit expert will dig out the linguistic secrets, the medical expert will recognize the newly found medicine like a jewel expert in the mine..... The interdisciplinary approach is inevitable need of the present day research in Vedas."*

– लेक्चरर संस्कृत, आर. के. एस. डी. कॉलेज, कैथल (हरियाणा)।

26. अनुसूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
अथर्व. 1/22/1.
27. विस्तृत वर्णन के लिए- वैदिक वाङ्मय में 'विज्ञान' द्वारा रामेश्वरदयाल गुप्त।
28. अथर्व., 9/8/22, इत्यादि।

www.thearyasamaj.org

कालभेद की व्यावहारिकता

–श्री रमेश चन्द्र

काल नाम इसीलिए पड़ा कि यह एक ही सत्ता या भाव की विविध कलाओं को, जलयन्त्र की आवर्त्ती गति की भान्ति, निरन्तर घुमाता या खण्डित करता रहता है। खण्ड रूप में दिखायी देने पर भी अखण्ड रूप में दिखायी देने की यह शक्ति 'काल' के कारण ही आती है।[1]

विश्व की प्रत्येक प्रक्रिया में, जीवन के प्रत्येक व्यापार में, 'काल' की ही प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है। इसीलिए काल को स्वयं एक ऐसा व्यवहार मान सकते हैं, जिसके अङ्गभूत होकर विश्व के सभी अन्य व्यापार प्रवृत्त होते हैं।[2] स्पष्ट है कि भर्तृहरि छः भाव विकारों की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार करके भी 'काल' को उसकी खण्डित सीमाओं में बांधना नहीं चाहते। उनकी दृष्टि में काल एक और अखण्ड है। वह हर क्रिया और वृत्ति को समरूप में ही निर्बन्धतया सामने लाता है। सभी भावविकार तब हीन अथवा क्षीण हो जाते हैं।[3] इसीलिए तब आत्मा निर्मुक्त, निर्बन्ध और निष्क्रम हो जाती है:

यथैवाद्भुतया वृत्त्या निष्क्रमं निर्निबन्धनम्।
अपदं जायते सर्वं तथास्यात्मा प्रहीयते॥[4]

काल एक होकर भी परिच्छेद्य –

एक ओर अविच्छेद्य सत्ता के रूप में काल को एक अविच्छिन्न शक्ति मानने पर भी भर्तृहरि उसके प्रवाह में दो सीमाएं खोज निकालते हैं। इन्हें 'जन्म-नाश' जैसे नाम देना उचित प्रतीत नहीं होता। वे इन दो अवधियों को 'बन्ध' और 'मोक्ष' कहना अधिक उचित समझते हैं। भगवद्गीता में भी 'बन्ध' और 'मोक्ष' को दो शक्तियों के रूप में माना गया है : एक के द्वारा बन्धन का आरम्भ तथा दूसरे के द्वारा बन्धन की समाप्ति होती है।[5]

भर्तृहरि कालसीमा के इस 'बन्ध' और 'मोक्ष' को नए नाम देते हैं: प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा। काल का तथाकथित विभाजन उसकी इन्हीं दो शक्तियों या गुणों के द्वारा सम्भव हो पाता है:

तमस्य लोकयन्त्रस्य सूत्रधारं प्रचक्षते।
प्रतिबन्धाभ्यनुज्ञाभ्यां तेन विश्वं विभज्यते॥
यदि न प्रतिबध्नीयात् प्रतिबन्धं च नोत्सृजेत्।
अवस्था व्यतिकीर्येरन् पौर्वापर्यविना कृताः॥[6]

---

1. वाक्यपदीय 3, कालसमुद्देश, 14.
2. वही, 12.
3. वही, 15.
4. वही, 26.
5. प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
   बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥
   – गीता, 18/30.
6. वाक्यपदीय, 3, कालसमुद्देश, 4, 5.

www.thearyasamaj.org

क्रियाभेदाय कालस्तु[7] और 'कालो भेदाय कल्पते'[8] के रूप में वर्णित और समर्थित काल को इस लोकरूपी यन्त्र का सूत्रधार मानते हैं। वह ही इस विश्व को प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञारूपी शक्तियों के द्वारा विभक्त करता है। यदि उसके द्वारा दृष्ट बन्धन और मोक्ष की यह प्रक्रिया न चले, तो पूर्वापरादि के भेद द्वारा स्पष्ट होने वाली व्यवस्था और क्रमपद्धति का उच्छेद ही हो जाए; क्योंकि तब सभी व्यवस्थाएं उलझी हुईं-सी नज़र आएंगी।

किसी भी वस्तु के परिच्छेद की दो सीमाएं होती हैं। इन सीमाओं के आने पर भी काल की अपनी शाश्वत गति या सत्ता में कोई अन्तर नहीं आता। क्योंकि **काल त्रैकालिक दृष्टि** से अपरिवर्तनीय है। इतना अवश्य है कि इन दो अन्तरों को स्वीकार करने के बाद हम उस काल के निरन्तर प्रवाह में विभाग, अवयव या क्रम के दर्शन करने लगते हैं। जिस प्रकार एक अखण्ड शरीर के कुछ अवयव होते हैं, पर वे स्वतन्त्र नहीं होते, उसी तरह एक ओर अखण्ड काल के इन दो अन्तों के कारण, विभाजन या अवयव दिखाई देने पर भी वह एक ओर अखण्ड ही बना रहता है। काल का यह दृश्य-विभाजन किसी एक विशिष्ट क्रिया या व्यक्ति-क्रिया का, काल के अनन्त प्रवाह में, स्थान निश्चित करने के लिए एक प्रयत्नमात्र ही कहा जा सकता है। भर्तृहरि के शब्दों में :

प्रतिबन्धाभ्यनुज्ञाभ्यां वृत्तिर्या तस्य शाश्वती।
तया विभज्यमानोऽसौ भजते क्रमरूपताम्॥[9]

अर्थात्, 'प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा' के रूप में काल की दो शाश्वत शक्तियां हैं। या यूं कह सकते हैं कि काल के शाश्वत स्वभाव के अंग रूप में ही ये दोनों धर्म रहते हैं। इन दो धर्मों से युक्त स्वभाव के कारण काल की अखण्ड सत्ता बंटती हुई और इस प्रकार क्रमरूप धारण करती हुई दिखाई देती हैं।

दो सापेक्ष परिभाषाएं –

इन दोनों को भर्तृहरि दो सापेक्ष परिभाषाओं के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके द्वारा विभक्त दिखाई देने वाली काल की सीमाओं को स्थायी नहीं कहा जा सकता। इन दोनों की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं –

प्रतिबन्धाभ्यनुज्ञाभ्यां नालिकाविवराश्रिते।
यदम्भसि प्रक्षरणं तत्कालस्यैव चेष्टितम्॥[10]

अर्थात्, जिस प्रकार घटीयन्त्र के तल में लगी नाली के छिद्र से पानी निकलते समय कुछ तो बाहर आता है और शेष अन्दर बन्धा रहता है, उसी प्रकार काल के प्रवाह में भी एक अवधि या सीमा को एक ऐसे विवरण के रूप में माना जा सकता है, जिससे निःसृत या पारगत काल को मुक्त भाग के रूप में और अनिर्गत काल को बद्ध भाग के रूप में कहा जा सकता है।

स्पष्ट है कि 'निःसृत' और 'अनिःसृत' दो सापेक्ष परिभाषाएं हैं। जो इस क्षण 'अनिःसृत' है, वह अगले ही क्षण 'निःसृत' हो जाएगा। दोनों का सम्बन्धसूत्र या आधारसूत्र है 'नालिका-विवर'। इस विवर में से जो पानी गुजर रहा है, उसे वर्तमान

7. वाक्यपदीय, 3, कालसमुद्देश, 2.
8. वही, 8.
9. वही, 30.
10. वाक्यपदीय, 3, कालसमुद्देश, 70.

www.thearyasamaj.org

काल से उपमित कर सकते हैं। प्रतिबन्ध उससे एक ओर की सीमा को बताता है, अभ्यनुज्ञा दूसरे ओर की। ये दोनों सीमाएं सापेक्ष हैं: एक पहले की स्थिति को बताती है, तो दूसरी बाद की। पहले की स्थिति को 'भूत' या 'गत' नाम से पुकारा जा सकता है और बाद की स्थिति को 'अनागत' या 'भविष्य' नाम दिया जा सकता है।

वर्तमान क्या है ?

इस प्रकार एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है : 'वर्तमान' क्या है? इस प्रश्न का उत्तर कदाचित्, स्पष्टता से साथ यह होगा: प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा के बीच का अन्तर। यह उत्तर उचित प्रतीत होता है। पर प्रश्न फिर उठ खड़ा होता है क्या प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा काल के किसी अन्तर को सूचित करते हैं, अथवा क्या उन्हें कुछ कालान्तर से प्रयुक्त और सूचित किया जा सकता है?

यह प्रश्न अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा में अन्तर अथवा दूरी, कुछ भी नहीं है। इन दोनों का पृथक्कारक 'क्षण' ही इन दोनों के बीच का अन्तर या दोनों के बीच की सीमा बन जाता है। यह बात अलग है कि हमारी कल्पना के क्षण का आयाम कितना है। प्रतिबन्ध और अभ्यनुज्ञा की सीमाएं भी प्रयोक्ता के मन पर ही आश्रित हैं। जिस प्रकार 'आजकल' शब्द 'कुछ क्षण' से लेकर 'सैंकड़ों वर्षों' की सीमा को स्वयं में अन्तर्हित कर सकता है, उसी प्रकार 'प्रतिबन्ध' और 'अभ्यनुज्ञा' के बीच का यह क्षण भी एक कालक्षण से लेकर 'ब्रह्मा के क्षण' तक हो सकता है। इस 'क्षण' को ही वर्तमान कह देते हैं। इस प्रकार इस काल की सीमा वक्ता के अभिधेय पर आश्रित है। दूसरे शब्दों में, 'वर्तमान' उस क्षण-समूह का नाम है, जो भूत और भविष्य के बीच एक सीमा का सा आभास देता है। साथ ही, यह भी स्मर्त्तव्य है कि यह क्षण समूहकाल के प्रवाह के अनुरूप चञ्चल होने से 'स्थिर' नहीं कहा जा सकता। 'स्थिर' यदि सापेक्ष-दृष्टि से कुछ हो ही सकता है, तो वह 'भूतकाल' ही हो सकता है। उस स्थिति में चले जाने के बाद कुछ भी 'वर्तमान' नहीं बन सकता। यद्यपि प्रायोगिक दृष्टि से 'वर्तमान' और 'भविष्य' की सीमाएं यहां भी उलझती दिखाई देती हैं। 'त्रिकाल सत्य' को सदा ही वर्तमान के द्वारा व्यक्त किया जाता है। हां, ऐतिहासिक सत्य के लिए उसका प्रयोग, चिन्त्य होने पर भी, सत्य है।

भर्तृहरि का मत–

यद्यपि विश्व अक्रम है, तब भी इसमें क्रम का चमत्कार दीखता ही है। यह सब काल के कारण।[11] यह काल भी अभिन्न है। तब भी क्रियाओं की स्थितियों द्वारा कल्पित उसके तीन भेद या विभाग व्यवहार की सुविधा के कारण मान ही लिए गए हैं।[12] एक ही सत्ता के तीन भेद सत्तावान् भावों के दर्शन और अदर्शन अथवा उनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति से सम्बद्ध हैं।[13]

---

11. वाक्यपदीय, 3, कालसमुद्देश, 46.
12. वही, 46.
13. वही, 49.

www.thearyasamaj.org

केवल 'दर्शन' या 'बुद्धिसीमा' में आने वाले काल को ही 'वर्तमान' कहा जा सकता है। यह एक क्षण से लेकर मन्वन्तर तक को आत्मसात् कर सकता है।

त्रैकालिक और ऐतिहासिक सत्यों की सीमा इससे भी आगे बढ़ जाती है। वहां काल एक अखण्ड सत्ता के रूप में ही दृष्टि या बुद्धि में आता है। इसीलिए काल की मूल स्थिति 'वर्तमान' ही ठहरती है।

भूत और भविष्य –

काल के अखण्ड प्रवाह में 'दर्शन' और 'अदर्शन' के भेद से बुद्धिसीमा में गृहीत और अगृहीत काल को ही दो या तीन भागों (या भेदों) में बांट दिया जाता है। निश्चय ही अगृहीत या 'अदर्शन' की दृष्टि से, 'वर्तमान' से भिन्न रूप में 'भूत' और 'भविष्य' अथवा 'अतीत' और 'अनागत' की सत्ता में बहुत अन्तर नहीं खोजा जा सकता। वे एक-सा महत्त्व रखते हैं। फिर भी, इन्हें एक कहना दार्शनिक दृष्टि से किसी सीमा तक ही उचित कहा जा सकता है। सत्य की दृष्टि से या तो काल को विभक्त ही स्वीकार नहीं करना चाहिए, और यदि करना ही हो तब उसे 'तीन' में ही विभक्त करके देखना चाहिए। 'तीन' इसलिए कि 'अदृष्ट' वह भी है, जो वर्त्तमान की 'दृष्ट' स्थिति से पूर्व था, और वह भी जो वर्तमान 'दृष्टि' से परे स्थित है या जिसे अभी आने का अवसर नहीं मिला। वर्तमान से 'पूर्व' की स्थिति वाले 'अदृष्ट' को 'अतीत' या 'भूत' एवम् उससे पर या अनागत 'अदृष्ट' को 'भविष्य' या 'अनागत' कह दिया जाता है।

भर्तृहरि जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से 'अतीत' और 'अनागत' की सत्ता में बहुत अन्तर नहीं खोजा जा सकता। फिर भी एक ऐसा अन्तर वे खोज निकालते हैं, जिसके बाद किसी प्रकार की शंका शेष नहीं रहती। उनके अनुसार : 'अनागत या भविष्य उस कालशक्ति का नाम है, जो जन्म होने की क्रिया में, या जन्मकाल में, प्रतिबन्ध या बाधा बनकर नहीं आती, बल्कि वह उसके साथ-साथ ही रहती है।' दूसरी ओर, अतीत या भूत उसे कहते हैं, जिसके रहने पर किसी वस्तु के जन्म की सम्भावना तक नहीं की जा सकती।[14] वैसा होना सम्भव नहीं रहता। इस प्रकार 'जन्म' में प्रतिबन्ध भूतकाल का कार्य ठहरता है। स्वभावतः 'अभ्यनुज्ञा' का सम्बन्ध 'भविष्य' से ही जोड़ा जाना चाहिए। 'प्रतिबन्ध' इसलिए 'भूत' से सम्बद्ध है कि उससे वर्तमान का प्रतिबन्ध होता है: अर्थात् भूत के रहते वर्तमान नहीं हो सकता। 'अभ्यनुज्ञा' का सम्बन्ध 'भविष्य' से इसलिए ठहरता है कि उसके रहते 'वर्तमान' की, और 'वर्तमान' के रहते उसकी, सहस्थिति सम्भव है, अभ्यनुज्ञात है। मूलतः ये दोनों ही 'भेदक बिन्दू' हैं। पर हैं ये बिन्दूमात्र ही, अधिक कुछ नहीं।

–शोध छात्र, संस्कृत विभाग, पञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़-160017

14. वाक्यपदीय, 3, कालसमुद्देश, 51.

www.thearyasamaj.org

आधुनिक संस्कृत कथा-साहित्य का अनुपम निदर्शनः

कथानकवल्ली

– श्री कौशल कुमार तिवारी

श्रव्य एवं दृश्य दो धाराओं में विभक्त संस्कृत-साहित्य रूपी सरिता आधुनिक युग में भी नैक विधाओं रूपी कुसुमों से सुवासित होकर अजस्र प्रवाहमान है। ''गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'' यह आभाणक संस्कृत काव्यकारों की परख प्रत्येक युग में करता रहा है। अर्वाचीन संस्कृत गद्यसाहित्य में जिस विधा ने पर्याप्त लोकप्रियता अर्जित की है, वह विधा है- 'लघु-कथा'। डॉ. बनमाली बिश्वाल के शब्दों में ''जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए लघुकथा एक समर्थ विधा है। यही कारण है कि विसङ्गतिपूर्ण इस अत्याधुनिक युग में इस विधा की अनुदिन लोकप्रियता बढ़ रही है''।[1]

कथा-साहित्य के क्षेत्र में राजस्थान प्रान्त का विशेष योगदान रहा है। जयपुर निवासी देवर्षि कलानाथ शास्त्री विख्यात साहित्यकार भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री के सुपुत्र हैं। देववाणी संस्कृत साहित्य की कई विधाओं यथा नाटक, कविता, उपन्यास, कथा आदि में आपने सफल लेखनी चलाई है। आपकी संस्कृत लघुकथाओं का संग्रह 'कथानकवल्ली' के रूप में हंसा प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित हुआ है। इस कथासङ्ग्रह में एक लघूपन्यास व पाँच लघु कथायें सङ्कलित हैं। इनकी कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

संस्कृतोपासिकाया आत्मकथा-

इस लघूपन्यास का प्रकाशन सर्वप्रथम 'भारती' नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप में हुआ था। इसका अपर शीर्षक 'जीवनस्य पाथेयम्' है। उपन्यास का कथानक एक संस्कृत ट्यूटर राकेश एवं उसकी शिष्या कल्पना के इर्द-गिर्द घूमता है। शनैः-शनैः कल्पना की रुचि 'संस्कृत' के साथ-साथ 'राकेश' में भी बढ़ जाती है। सहसा एक दिन राकेश वह नगर छोड़कर चला जाता है। इधर कालान्तर में कल्पना का विवाह एक आई.ए.एस. अधिकारी से तय हो जाता है। उपन्यास के 'क्लाइमेक्स' में जब पाठक को पता चलता है कि राकेश ही वह आई.ए.एस. अधिकारी है तो वह चमत्कृत हो उठता है। ''संस्कृत साहित्य में इतनी अश्लीलता क्यों हैं''? संस्कृत छात्रों में स्वाभाविक रूप से उठने वाले इस प्रश्न का समाधान कवि ने इस प्रकार किया है- ''समुपयाते समये भवती स्वयमेव ज्ञास्यति यन्नेयमश्लीलता। साहित्य-सिद्धान्तेषु अश्लीलतायाः सम्बन्धः शब्दैर्नास्ति, प्रकरणेन भावनया चाऽस्ति। पुनश्च काव्यानीमानि सहृदयैः रसिकैश्च रसनीयानीति बुद्ध्या निर्बद्धानि न बालपाठ्यत्वबुद्ध्या''।[2]

शत्रू मित्रे वा?

यह एक मनोवैज्ञानिक कथा है। इसमें दो मुख्यपात्र-महेन्द्र व राकेश हैं। दोनों बाल्यकाल में

1. दृक (15-16), पृष्ठ - 92

2. कथानकवल्ली, पृष्ठ - 20

www.thearyasamaj.org

पडौसी-मित्र रहते हैं, किन्तु एक घटना के कारण वे शत्रु बन जाते हैं। कालान्तर में जब वे पुनः मिलते हैं तब महेन्द्र एक चिकित्सक तथा राकेश महेन्द्र के पुत्र के विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्यरत होते हैं। राकेश को देखकर महेन्द्र का अपमानित मन प्रतिशोध लेने को आतुर हो जाता है। इसकी परिणति होती है- राकेश के घर में अग्निदाह से। इस अग्निकाण्ड में राकेश की गर्भवती पत्नी अजन्मे बच्चे के साथ प्राण त्याग देती है। उसी समय राकेश भी ईर्ष्यावश एक षड्यन्त्र के माध्यम से महेन्द्र के पुत्र का वध करवा देता है। अन्त में दोनों को अपने दुष्कार्यों पर पश्चात्ताप तब होता है जब दोनों का सर्वस्व खो जाता है। वे पुनः मित्र बनकर एक-दूसरे को सान्त्वना देते हैं- "निशीथिन्या अवदाते चन्द्रिकाचये द्वावपि शत्रू मित्रत्वमापन्नौ स्तः। अतीतस्य घटनाः सजीवा भूत्वा संस्फुरन्ति। शैशवस्य सख्यं पुनः स्थापितमस्ति। दुःखगाथामन्योन्यं श्रावयित्वा हृदयं शान्तिम् अनुभवति।"[3]

दिग्भ्रान्ति -

यह कथा भी मनोविज्ञान का आधार लेकर रची गई है जिसमें गिरीश नामक एक संस्कृत-छात्र की मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है। गिरीश के पिता चाहते हैं कि वह विवाह कर ले, किन्तु कन्याओं को अध्ययन-कार्य में बाधा मानने वाला गिरीश इससे सहमत नहीं होता। एक बार महाविद्यालय में आयोजित नाटक में अभिनय करते हुए गिरीश सुधा के सम्पर्क में आता है और प्रेम के अस्पष्ट अंकुर उसके मन में अंकुरित हो जाते हैं। अध्ययन-कार्य व स्त्री-आकर्षण के मध्य दोलायमान गिरीश सहसा अपने गाँव को प्रस्थान कर जाता है। कथाकार ने इस कथा को अधुरा ही छोड़ दिया है क्योंकि उनका उद्देश्य नायक-नायिका के मिलन को न दिखलाकर पात्रों के मनोभावों व उनके द्वन्द्व को चित्रित करना है।

अस्पृश्यताया रहस्यम् -

यह एक सामाजिक कथा है, जिसमें भारतीय समाज में व्याप्त अस्पृश्यता नामक कुरीति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। पण्डित गरुडध्वज मिश्र, जो कि नगर में सम्मानित पात्र हैं, रामदत्त के पुत्र को संस्कृत पढ़ाने से मना कर देते हैं, क्योंकि जाति से वह अन्त्यज हैं। पं. मिश्र जी कहते हैं कि यदि वे एक अन्त्यज को पढ़ायेंगे तो नियमानुसार उन्हें अध्ययन कार्य के उपरान्त स्नान करना पड़ेगा और शीतकाल में ऐसा करना अधिक कष्टदायी होता है- "पुनः अस्माकं परम्परानुसारं संजयं पाठयित्वा, स्नानमपि कर्त्तव्यं भवेद् यत् शीतकाले कष्टावहं सम्पद्यते।"[4] कालान्तर में इसी अन्त्यज का पुत्र संजय जब चिकित्सक बनकर गम्भीर रोग से पीड़ित व परिजनों द्वारा संक्रामक-रोग से उत्पन्न घृणा के कारण त्यक्त पण्डित गरुडध्वज मिश्र की चिकित्सा आत्मीयता से करता है तो न केवल पण्डित जी को अपने पूर्व कार्य पर पश्चाताप होता है अपितु उन्हें अस्पृश्यता का रहस्य भी ज्ञात हो जाता है कि कोई भी जन्म से अस्पृश्य नहीं होता। उच्च वर्ग में उत्पन्न होने पर भी रोग के कारण वे अस्पृश्य हो गये थे- "अस्पृश्यता का भवतीत्यहमधुना बुद्धवानस्मि। न ही कश्चन जन्मना अस्पृश्यो भवति। पश्य, अस्पृश्यस्त्व धुनाऽहमस्मि, यः पूतिगन्धिना, संक्रामकेण व्रणरोगेन पीडितः।"[5]

---

3. कथानकवल्ली, पृष्ठ - 66
4. वहीं, पृष्ठ - 84
5. वही, पृष्ठ - 88

www.thearyasamaj.org

दम्भ-ज्वरः –

यह एक व्यंग्यात्मक कथा है। इसमें कथाकार ने दम्भ को ज्वर के समान चित्रित किया है। ज्वर के समान दम्भ भी समय आने पर दूर हो ही जाता है। दो युवा पात्र रेलयान की प्रथम श्रेणी में यात्रा कर रहे हैं। उनके साथ जो सहभागी हैं, उसकी पण्डितों जैसी वेशभूषा व क्रियाकलाप देखकर वे दोनों अंग्रेजी भाषा में उसकी हँसी उड़ाते हैं, जिससे वह पण्डित समझ न पाये। गन्तव्य स्थल पर पहुँचकर जब उन दोनों युवकों को ज्ञात होता है कि उनका सहयात्री विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग का अध्यक्ष रह चुका है तो उनके दम्भ का ज्वर उतर जाता है। युवापीढ़ी की दृष्टि में भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की क्या स्थिति है ? इसका वर्णन कथाकार ने इस प्रकार किया है- "भारतीय-भाषायाः पत्रेषु पठनीया सामग्री एव न भवति, नगराणां रथ्यानां च लघवः अनावश्यका वा समाचारा भवन्ति, वैचारिकी सामग्री त्वाङ्गल-भाषापत्रेष्वेव भवति।"[6]

मर्यादा-

इस कथा को सामाजिक कथा की श्रेणी में रखा जा सकता है। आधुनिक भौतिकतावादी युग में समाज में सहज सुलभ देह-सुख व उसके परिणामों की ओर यहाँ सङ्केत किया गया है। इस कथा का मुख्यपात्र समीर है जो अपनी किशोरावस्था में रेवती को अध्ययन-कार्य में सहायता देता है। एक समय एकान्त में रेवती कुछ कहने के लिए समीर के पास जाती है, किन्तु मर्यादा में बंधा समीर उसे कुंछ बोलने के पूर्व ही वहाँ से जाने को कहता है। कालान्तर में रेवती का विवाह अन्य पुरुष से हो जाता है। पुनः मिलने पर रेवती समीर को धन्यवाद देती है, क्योंकि हो सकता था कि युवावस्था के कारण समीर के न रोकने पर उनके मध्य कुछ अनुचित घटित हो जाता। भारतीय संस्कृति शरीर-शुद्धि को आवश्यक मानती है, क्योंकि किसी क्षण में घटित त्रुटि से शारीरिक व मानसिक समस्यायें बढ़ सकती हैं- "अद्य पाश्चात्यमनस्तत्त्वज्ञा-नामनुयायिनः आधुनिकाः केवलं शरीरशुद्धेरेता-वन्महत्त्वमुपहसेयुर्नाम, किन्तु किं तदिदमपलपितुं पार्यते यदेवंविधेष्वेव क्षणेषु, शरीरेणैव, किंचन तथाविधं सम्पाद्यते येन सर्वविधाः समस्याः समुद्भवन्ति शारीरिक्यो मानसिक्यश्च।"[7]

देवर्षि कलानाथ शास्त्री रचित इन कथाओं में वर्णित परिवेश आधुनिक जीवन से संबंध रखता है। आध्यात्मिकता, धर्म, संस्कार, संस्कृति के स्थान पर एकमात्र शरीर के आधार पर जी रही पीढ़ी की कल्पनाओं,महत्त्वाकांक्षाओं, धारणाओं, विश्वासों, मनोभावों आदि का इन कथाओं में सूक्ष्म-दृष्टि से वर्णन किया गया है। संस्कृत कथासाहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति का अनुपम निदर्शन हैं ये कथायें।

– सुपुत्र श्री बद्रीलाल शर्मा, मालादेवी मोहल्ला,
वार्ड नं. 31, बिहारी जी के मन्दिर के पास, बारां (राज.)-325205

---

6. कथानकवल्ली, पृष्ठ – 93

7. वहीं, पृष्ठ – 102

www.thearyasamaj.org

विविध समाचार

नियमित व्यायाम और जांच से मधुमेह पर विजय –

दरभंगा (वार्ता) : सक्रियता को मधुमेह के उपचार में सर्वाधिक बड़ी ओषधि बताते हुए चिकित्सकों ने कहा है कि नियमित व्यायाम एवं जांच से इस रोग पर काफी सीमा तक नियंत्रण पाया जा सकता है।

दरभंगा मैडीकल कॉलेज अस्पताल के ओषधि विभाग की ओर से विश्व–मधुमेह–सप्ताह पर आयोजित एक संगोष्ठी को संबोधित करते हुए वरिष्ठ मधुमेह–रोग विशेषज्ञ डॉ. ए. के. गुप्ता ने लोगों से सक्रिय रहते हुए नियंत्रित भोजन तथा नियमित जांच कराने की सलाह दी। मधुमेह रोगियों के लिए इंसुलिन अमरत्व समान है। उन्होंने मधुमेह से बचाव के लिए गरीब का खाना खाने की आदत डालने एवं तनाव मुक्त रहने की सलाह पर बल दिया है। उन्होंने कहा है कि मधुमेह पर सही ढंग से नियंत्रण हो जाए तो इससे जनित रोगों की भयावहता से भी मुक्ति मिल सकती है।

स्टेम सैल से तैयार की छोटी किडनियां –

वाशिंगटन, (प. स.) : वैज्ञानिकों ने पहली बारी इन्सानी स्टेम सैल के जरिए छोटी किडनियां तैयार करने में सफलता प्राप्त की है। साल्क इंस्टीच्यूट फार बायोलॉजीकल स्टडीज के वैज्ञानिक दल ने इस उपलब्धि को प्राप्त किया। उनकी इस सफलता से किडनी से संबंधित बीमारियों को बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलेगी।

ज्यादा दोस्त होने से दिमाग होता है तेज –

न्यूयार्क, (प. स.) : जिन लोगों के ज्यादा दोस्त होते हैं उनका दिमाग अधिक तेज होता है। इस शोध को ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के शोधकर्त्ताओं ने प्रस्तुत किया है। शोधकर्त्ताओं ने पाया कि बड़े समूह में रहने वाले बंदरों के दिमाग के कुछ हिस्से अधिक सक्रिय और बड़े थे।

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

अनुदान–

डी. ए. वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी,
चित्रगुप्त रोड, नई दिल्ली। 5, 00000/-

दान –

श्री एम. पी. बीर,
विजय नगर, दिल्ली। 501/-

भेंट –

प्रो. (डॉ.) रेणू कपिला, अध्यक्षा, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला द्वारा संस्थान के कम्प्यूटर-शिक्षण विभाग को एक कम्प्यूटर भेंट किया गया। इस प्रशंसनीय कार्य के लिए डॉ. रेणू कपिला का हार्दिक धन्यवाद।

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य दिवस का शुभारम्भ प्रति सप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। नवम्बर 2013 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

शोक-समाचार –

विश्वेश्वरानन्द संस्थान के शुभचिन्तक, निष्ठावान् आर्यसमाजी, समाजसेवी तथा डी. ए. वी. मैनेजमैण्ट, होशियारपुर के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों को समय-समय पर सक्रिय रूप में सुशोभित करने वाले डॉ. राजेन्द्रपाल महता जी का 6.11.2013 को देहान्त हो गया। संस्थान की ओर से शोकाकुल परिवार के प्रति समवेदना प्रकट की जाती है तथा प्रभु से प्रार्थना की जाती है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

संस्थान के हितैषी प्राध्यापक डॉ. चन्द्रप्रकाश जी आर्य का गत जनवरी, 2013 को करनाल में आकस्मिक देहान्त हो गया, जिसका हमें अभी कुछ दिन पहले ही पता चला। आप इस संस्थान के ही छात्र थे, उसके बाद आपने इसी संस्थान में कुछ समय तक कार्य किया। यहाँ से जाने के बाद आप हमारे संस्थान की कार्यकारिणी के भी कुछ वर्षों तक सदस्य रहे। आप एक अच्छे लेखक और वक्ता थे। आपके कई लेख आर्यसमाज की विभिन्न पत्रिकाओं में छपते रहते थे। संस्थान की हिन्दी पत्रिका विश्वज्योति में भी आपके लेख कई बार छपे।

उनके निधन से एक ओर जहां विद्या के क्षेत्र में हानि हुई है, वहीं हमें भी अपने व्युत्पन्न विद्वान् की मृत्यु से महती हानि हुई है।

संस्थान की ओर से प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति दे।

सूचना

विश्वज्योति के विशेषांक-2014 (अप्रैल-मई तथा जून-जुलाई) के लिए ''**नीति-अंक**'' प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है। पाठकों एवं लेखकों से निवेदन है कि आप एतद्-विषयक संक्षिप्त लेख भेज कर अनुगृहीत करें। इसकी विस्तृत जानकारी अगले मास की विश्वज्योति में प्रकाशित की जाएगी।

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-११-२०१३ को प्रकाशित।